पुरश्चरण पद्धतिः

(श्री अनन्त श्री स्वामी मन्दिरम्, मणिपुर धाम)

-: प्रकाशक :-

श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया (म. प्र.)

पुरश्चरण पद्धतिः

लेखक :
कुलमार्तण्ड राजगुरु
स्व. पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री
साहित्यरत्न, विद्याभूषण
श्रीदुर्गा-निवास, नजीवाबाद रोड, कोटद्वार
गढ़वाल (उ० प्र०)

श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया (म.प्र.)

प्रकाशक :
श्री पीताम्बरापीठ
दतिया (म.प्र.)

पञ्चम आवृत्ति-2001

मूल्य 10/- रूपये

मुद्रक :
शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.,
ग्वालियर रोड, झाँसी (उ.प्र.)

प्राक्कथन

पुरश्चरण पद्धति के यशस्वी लेखक विद्याभूषण,कुलमार्तण्ड, राजगुरू श्री पं. योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री ने अनेक शास्त्रीय प्रमाणों से गर्भित इस ग्रन्थरत्न को लिखकर मंत्रयोग के साधकों के लिये बड़ा ही उपकार किया है क्योंकि साधकों के लिये इस समय ऐसा उपयोगी ग्रन्थ कोई दूसरा उपलब्ध नहीं है। अभ्यास आरम्भ के दिन से सिद्धि पर्यन्त किन-किन बातों की साधक को आवश्यकता होती है, इसे सुगमरीति से समझाया गया है।

शास्त्री जी की विषय प्रतिपादन शैली सरल, सुगम एवं बोधगम्य है, जिसे विद्वान जानते ही है। हमारी सम्मति में तो यह पुस्तक मंत्रशास्त्र की 'गाइड' है, जिसे सभी साधकों को अपने पास अवश्य रखना चाहिए। पुस्तक इस ढंग से लिखी गई है कि मंत्र-शास्त्र की साधक के उपयोग की कोई बात नहीं छूटी है। शास्त्रीजी ने ऐसी उपयोगी पुस्तक श्री पीताम्बरापीठ-संस्कृत परिषद् द्वारा प्रकाशित कराने की जो अनुमति दी है वह सर्वथा प्रशंसा के योग्य ही नहीं अपितु परमोपयोगी भी है।

आशा है कि साधक जनता इससे अवश्य ही लाभ उठायेगी।

स्वामीजी

पीताम्बरा-पीठ
वनखण्डेश्वर दतिया (म.प्र.)

प्रकाशकीयम् (चतुर्थ संस्कण)

समग्र तन्त्र शास्त्र में प्रस्तुत ग्रन्थ 'पुरश्चरण पद्धति' साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। प्रकाण्ड तान्त्रिक श्री योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री ने बड़े ही श्रम से प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में साधक को पुरश्चरण करने से पूर्व किन किन आवश्यक नियमों का पालन करना है। भूत शुद्धि, कुल्लुका, सेतु, महासेतु आदि का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। बिना पुरश्चरण के मन्त्र सिद्धि अप्राप्त है। जिस प्रकार निर्जीव शरीर व्यर्थ हो जाता है। उसी प्रकार बिना मन्त्र चैतन्य के जप भी व्यर्थ हो जाता है।

'मननात्त्रायते इति मन्त्रः' मनन करने से जो साधक की रक्षा करे उसे मन्त्र कहते हैं।

जीवहीनो यथा देही सवं कर्मसु न क्षमः।
पुरश्चरण हीनोऽपि तथा मन्त्र प्रकीर्तिमः।।
जपो होम तर्पणञ्चाभिषेकोतर्पण ब्रह्मभोजनम्
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते।।

प्रत्येक साधक को जप की निर्धारित संख्या तद्दशांश होम तद्दशांश तर्पण, मार्जन तथा ब्राह्मण भोजन नितान्त अपेक्षित है। प्रस्तुत ग्रन्थ में किस देवता की आराधना किस माला से करनी चाहिए तथा क्या क्या नियम पालन करना आवश्यक है यह सब दर्शाया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ का यह चतुर्थ संस्करण इस बात का द्योतक है कि, यह ग्रन्थ साधना रत या साधना के इच्छुक जिज्ञासुओं को अतीव आवश्यक है। श्री दौर्गादत्ति जी शास्त्री कोटद्वार गढ़वाल से समय समय पर महाराज जी के समीप आकर मार्गदर्शन लेते रहते थे। वे भी एक सिद्ध साधक थे।आशा है साधक जन इस ग्रन्थ से लाभान्वित होंगे।

ओम नारायण शास्त्री
मन्त्री
श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद,
दतिया म.प्र.

शारदीय नवरात्र
संवत् 2051

प्रकाशक की कलम से ...

मन्त्र सिद्ध करने, मंत्र को जागृत एवं चैतन्य करने, मंत्रों का पुरश्चरण करना अतीव आवश्यक एवं उपयोगी है। बिना पुरश्चरण के मंत्र चैतन्य नहीं होते, और साधकों को अभीष्ट की प्राप्ति नहीं कराते। जिस प्रकार से निर्जीव एवं निष्प्राण कुछ भी करने में असमर्थ है उसी प्रकार से पुरश्चरण के बिना मंत्र भी साधक में देवत्व की अनुभूति कराने में असमर्थ होते हैं। कहा भी गया है-

"जीव हीनो यथा देही सर्व कर्मषु न क्षमः।
पुरश्चरण हीनो ऽपि तथा मंत्र प्रकीर्तितः।।

कुल मार्तण्ड स्व. यौगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री जी कृत "पुरश्चरण पद्धति" में पुरश्चरण विषयक स॰ि विषयों का सरल, स्पष्ट एवं सुबोध भाषा में संक्षिप्त निर्वचन किया गया है।

आसन के प्रकार, माला के प्रकार, विभिन्न कार्यों की सिद्धि हेतु आसन एवं माला का प्रयोग, विशिष्ट देवताओं के मंत्रों की संख्या, जप, होम, तर्पण, अभिषेक, ब्राह्मण भोजन आदि विषय इस लघुकाय पुस्तिका में देखने को मिलेगें।

प्रस्तुत पुस्तक का पांचवा संस्करण प्रकाशित कर पीठ, प्रसन्नता का अनुभव कर रही है।

श्रावणी

4 अगस्त, 2001

मंत्री

श्री पीताम्बरा पीठ दतिया

(म.प्र.)

भूमिका

सम्वत् 2011, तेरहवें वर्ष की 'चण्डी'-पत्रिका की दूसरी संख्या के 57 वें पृष्ठ पर श्रीगणेशदत्त मिश्र महाशय ने 'शाक्तों की गुरू-परम्परा' नामक लेख में लिखा था- परन्तु शाक्तों की उपर्युक्त दयनीय दशा की क्या विधि है? वह कितने प्रकार की है? पुरश्चरण का क्या महत्व है? पुरश्चरण कैसे किया जाता है?

'आज मुख्य-मुख्य आवश्यक बातों पर कोई भी कुछ नहीं लिखता, हां, पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री तथा राना धनशमशेर जङ्गबहादुर ने एक-दो बार इन प्रश्नों की विवेचना की थी, परन्तु उतना ही अलं नहीं है, इन प्रश्नों पर बारबार लिखा जाना चाहिये।'

मिश्र जी को इन पंक्तियों से तथा स्थानीय 2-3 नवदीक्षित साधकों से प्रेरणा पाकर हमने इस पुरश्चरण पद्धति को लिखने का सङ्कल्प किया और माघ कृष्ण नवमी (2015) को इसे सम्पूर्ण कर दिया।

पुरश्चरण, मन्त्र-सिद्धि के लिए किया जाता है। यतः बिना पुरश्चरण किये मन्त्र सिद्ध नहीं होता है। पुरश्चरण में मन्त्र-जीप ही मुख्य है, होम-तर्पणादि उसके अङ्ग है।अतः मन्त्र जरा एक प्रकार का जप-योग है। जप, वाचिक,उपांशु मध्यम और वाचिक अधम अथवा कनिष्ठ बताया गया है।

किसी मन्त्र अथवा देवता के नाम को बारम्बार दोहराना ही जप कहा जाता है। मन्त्र और देवता भेद नहीं है। अतः मंत्र सिद्ध करके हम देवता को प्रसन्न करते हैं। और देवता को प्रसन्न करने वाला मन्त्र हमें श्री गुरूदेव से प्राप्त होता है। अतः मन्त्र, गुरू

और देवता एक ही वस्तु है, भिन्न-भिन्न नहीं है। अतएव सुन्दरी-तापिनी में लिखा है--

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थ वाचकाः ।
तथा मन्त्रो देवता च गुरूश्चैकार्थ वाचकाः।।

अर्थात् जैसे घट, कलश और कुम्भ ये तीनों पद पर्याय वाचक है और अर्थ तीनों का एक ही है, केवल नाम से भेद है- इसी प्रकार मन्त्र, देवता और गुरू ये तीनों एकार्थ वाचक पद है।

नाम में भेद अवश्य है किन्तु अर्थ में नहीं। जिस प्रकार मन्त्र और देवता एक है, क्योंकि अर्थ में भेद नहीं है और मन्त्र देवता का रूप है उसी प्रकार गुरू और देवता भी एक है, क्योंकि गुरू द्वारा ही हमें इष्टदेव के मन्त्र-जप से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है अतएव लिखा है:-

श्रीगुरोर्निश्चला भक्तिवर्धते हि यथा यथा।
तथा तथास्य विज्ञानं वर्धते कुल नायिके।।

तथा, श्रीललिता-सहस्रनाम में श्रीमाता के नाम 'गुरू मूर्तिः गुरूमण्डल रूपणि' इत्यादि आये है। गुरूमूर्ति का अर्थ 'गुरू देवो मूर्तिः गुरूमूर्ति का अर्थ शरीरयस्या' अर्थात गुरू ही जिसका शरीर है। इस प्रकार गुरू देवता और मन्त्र तीनों एक ही वस्तु है।

गुरू, देवता और मन्त्र की एकता के कारण से ही गुरू के निकट बैठकर पुरश्चरण करना सर्वोत्तम बताया है।

जप देवता की छाया अथवा उसका साक्षात्कार करने का एक सुलभ मार्ग है, भगवद्‌भक्त ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि आदि महात्माओं ने भगवान के नाम के जप के द्वारा ही अभौतिक सिद्धि प्राप्त की थी।

जप, योग का एक अत्यावश्यक अङ्ग है। अतएव भगवान योगीश्वर श्रीकृष्ण गीता में 'यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि' ऐसा कहते हैं।

इस कलिकाल में जप यज्ञ से मन्त्र-सिद्धि द्वारा ऐहिक और पारलौकिक सुख और शांति प्राप्त कर सकते है। अतएव कहा है-

श्रीसुन्दरी साधन तत्पराणां,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

मन्त्र का बार-बार उच्चारण करना जप है। भगवती अथवा भगवान के स्वरूप और गुणों का चिन्तन करना ध्यान है। यही जप और ध्यान का अन्तर है। ध्यान के सहित यदि जप किया जाय तो सबसे उत्तम है, किन्तु पुरश्चरण अभ्यास करने वालों को इसमें पहले-पहल कठिनता प्रतीत होती है, तथापि धीरे-धीरे यह कठिनता सरलता से परिणति हो जाती है।

नाम और वस्तु जिसका (वस्तु का) हम नाम द्वारा संकेत करते है, दोनों अभिन्न है। शब्द और विचार में अभेद है। जैसे हम अपने गुरू देवता का ध्यान करते है, तो गुरूदेव की मूर्ति हमारे मन में उपस्थित हो जाती है। अतः जप और ध्यान साथ-साथ रहते हैं और उनमें अभेद है, किन्तु पहले-पहल भेद मालूम होता है और कठिनता का अनुभव प्रतीत होता है।

पुरश्चरण में जप करते समय हमकों भावना करनी चाहिए कि हम अपने इष्टदेवता की प्रार्थना कर रहे है और वह हमारी प्रार्थना को सुन रहा है, और वह हमारी मनोभिलषित सिद्धि को पूरा करने के लिए अभय दान दे रहा है। पुरश्चरण में जप करते समय मन्त्र के अर्थ को समझकर यह भावना करनी चाहिए कि भगवती हमारे हृदय मन्दिर में प्रकाशित हो रही है, तथा हमारे जप को सुन रही है।

पुरश्चरण में जप पूर्ण श्रद्धा तथा भक्ति के साथ करना चाहिए। जप के समय पुरश्चरणकर्ता के हृदय में वही

भक्ति-भावना होनी चाहिए। जो उसके प्रत्यक्ष दर्शन के समय सम्भावना की जा सकती है।

मन्त्र शब्द 'मनु अवबोधने' तथ 'त्रेड. पालने' (रक्षा करना) धातुओं से और 'मंत्रिगुप्त परिभाषणे' धातु से बना है। इसकी व्युत्पत्ति 'मननातत्रायते' इति मन्त्रः। अर्थात जो मनन करने से साधक की रक्षा करता है। अतएव कुलार्णव दशमोल्लास में लिखा है:-

मननात्तस्य रूपस्य वेदस्यामित तेजसः।
त्रायते सर्वभयतस्तस्मान्ममन्त्र इतीरितः।।

अर्थात अमित प्रभावशाली वेद के सार-रूप का जिसमें मनन है और संसार के आवागमनादि के सम्पूर्ण भयों से जो रक्षा करता है उसे मन्त्र कहते हैं। अतएव श्रीललिता सहस्रनाम भाष्य में श्रीभासुरा-नन्दनाथ लिखते हैं:-

संसार क्षय कृत्राण-धर्मण्यो मन्त्र उच्यते।

अर्थात सांसारिक आवागमनादि भयों को नाश करके, मन्त्र, भक्त की रक्षा करता है। अतएव वह मन्त्र कहलाता है। इसका (मन्त्र का) अर्थ गुप्त-रहस्य भी है :-

संसार के हित-साधनार्थ वैदिक और तान्त्रिक मन्त्रों का लक्ष्य एक ही है। अतएव रुद्रयामल लिखता है :-

यद्वेदैर्गम्यते स्थानं, तत्तन्त्रैरपि गम्यते।
ब्रह्म क्षत्रिय विट् शूद्रा, स्तेन सर्वेऽधिकारिणः।।

अर्थात् वेद के जानने वाले जिस स्थान को प्राप्त होते है उसी स्थान में तान्त्रिक लोग भी पहुंचते है। अतः तन्त्र-शास्त्र में प्रवेश के लिए चातुर्वर्ण्य को अधिकार है।

- लेखक
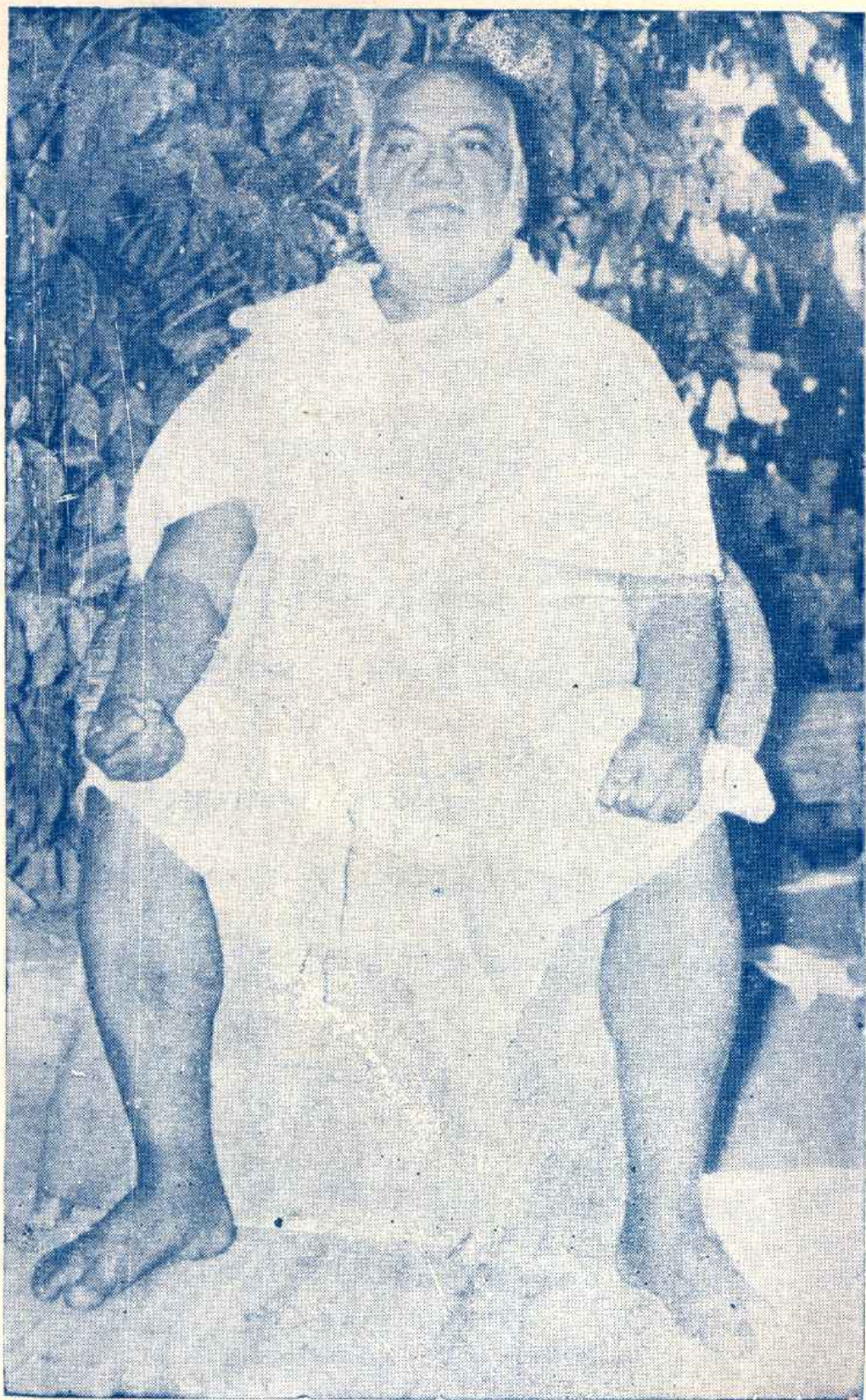
ब्रह्मलीन
श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य श्री अनन्तश्री श्री स्वामी जी महाराज, वनखण्डेश्वर, दतिया (म. प्र.)

पुरश्चरण-पद्धतिः

....

मंगलाचरणम्

एकं सच्चिन्मयं ब्रह्म देवादि पशु योनिषु।
दर्शयन्तं स्वरूपेण गुरूं गजमुखं भजे॥१॥

ललितां तुङ्गकुचान्तां कान्ताङ्कसंस्थितां शान्ताम्।
कामेश्वर शिवकान्तां कस्तूरीतिलकाङ्कितां वन्दे॥२॥

(श्रीपितृपादाः दीर्गादत्ति पण्डित हरिकृष्ण शर्मणः)

युग्मकम्

प्रकाश-प्रतिभा-ज्ञानानन्दनाथ-त्रयात्मिकाम्।
महाकामेश-महिषीं महात्रिपुरसुन्दरीम्॥१॥
ध्यायं ध्यायं तु श्रीविद्यां पुरश्चरण पद्धतिः।
अमृतानन्दनाथेन साधकेभ्यः प्रदर्श्यते॥२॥

(लेखक)

पुरश्चरण पद्धतिः

इष्टशक्ति के विकास और संचार करने का मौलिक रहस्य मन्त्र की पुरश्चरण रूपी वैज्ञानिक क्रिया है। श्रीगुरूदेव से दीक्षा द्वारा मन्त्र प्राप्ति के अनन्तर मन्त्र-सिद्धि के लिए पुरश्चरण करना अथवा अनुष्ठान करना नितांत आवश्यक है।

जब तक मन्त्र का पुरश्चरण नहीं किया जाता, तब तक वह इस प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार जीव से रहित देह। अर्थात् जैसे हम जीव-रहित शरीर से कोई काम नहीं ले सकते, वैसे ही बिना पुरश्चरण किये हम गुरू-कृपा द्वारा प्राप्त मन्त्र से भी कोई कार्य नहीं ले सकते। अत: पुरश्चरण ही मन्त्र का जीव है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जीव से (प्राणों से) रहित शरीर निष्क्रिय होता है, एवमेव पुरश्चरण-रहित मन्त्र निर्जीव है और उससे किसी प्रकार की क्रिया का सम्पादन नहीं हो सकता। अतएव यामल में लिखा है:-

जीवहीनो यथा देहो सर्व कर्मसु न क्षमः।
पुरश्चरण हीनोपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।।
कि होमैः कि जपैश्चैव किं मन्त्र न्याय विस्तारैः।
रहस्यानाञ्च मन्त्राणां यदि न स्यात् पुरष्क्रिया।
पुरष्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं जीव उच्यते।

इस प्रकार पुरश्चरण की आवश्यकता दिखाकर उसका स्वरूप अथवा लक्षण लिखा जाता है:-

पुरश्चरण लक्षण

जपा होमस्तर्पणञ्चाऽभिषेकों ब्रह्म भोजनम्।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते।।
पुरश्चरणकं देवि पञ्चांग प्रोच्यते बुधैः।
जपो होमस्तर्पणञ्च मार्जनं ब्रह्मभोजनम्।।
पूर्व सर्व दशांशेन चाङ्ग. स्यादुत्तरोत्तरम्।

पूजा त्रैकालिको नित्य जपस्तर्पणमेव च।।
होमो ब्राह्मण भुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते।।

(हंस माहेश्वर तथा कुलार्णव)

अर्थात् मन्त्र का जप, हवन, तर्पण, अभिषेक (मार्जन) और ब्राह्मण भोजन इस पञ्चांग-उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। पुरश्चरण के साथ त्रैकालिकी-पूजा का भी विधान है। पुरश्चरण में जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन, और मार्जन का दशांश ब्रह्म भोजन।

ब्रह्म-भोजन दशांश तो पुरश्चरण का अत्यन्त आवश्यक अंग है। यदि ब्रह्म-भोजन में दशमांश से अधिक ब्राह्मणों का भोजन कराया जाय तो 'अधिकस्याऽधिकं फलम्' वाली बात चरितार्थ होती है।

दशाङ्ग पुरश्चरण

पुरश्चरण पञ्चांग ही नहीं कहा जाता अपितु दशांग भी कहा जाता है। जैसे कि शारदा-तिलक की टीका में लिखा है:-

पञ्चाङ्गैः सहितं त्वेतत् दशाङ्गं कथ्यते बुधैः।
दशाङ्गोपासनं भक्तया पुरश्चरणमुच्यते।।

पुचरश्चरण के पांच अंग तो पहले लिख दिये गये है, अब अन्य पांच अंग नीचे लिखे जाते है, जिनके योग से पुरश्चरण के अंगों की संख्या दश हो जाती है। सप्त टीका युत सप्तशती में लिखा है:-

पटलं पद्धतिर्वमं तथा नाम सहस्रकम्।
स्तोत्राणिचेति पञ्चाङ्ग दैवतोपासने स्मृतम्।।
कवच देवता गात्रं पटक्षं देवता शिरः।
पद्धतिर्देव हस्तौ तु मुख साहस्रकं स्मृतम्।।
स्तोत्राणि देवता पादौ पञ्चांग पञ्चभि स्मृतम्।
पञ्चांगैः सहितत्वेतत् दशांङ्गम् कथ्यते बुधैः।।

अर्थात् देवतोपासना के पांच अंग निम्नलिखित है:-

1 पटल 2 पद्धति 3 कवच 4 सहस्रनाम 5 स्तोत्र। पटल देवता का सिर, सहस्रनाम देवता का मुख, कचव देवता का शरीर, पद्धति देवता के हाथ और स्तोत्र (स्तुति) देवता क पैर है। इस प्रकार दोनों पञ्चांग मिलाकर पुरश्चरण के दश अंग होते है। पद्धति का अर्थ पूजा पद्धति है। अत: पद्धति पूर्वक ही पूजा करनी चाहिए। यदि पद्धति के स्थान पर ग्रन्थकार पूजा शब्द लिख देता तो पूजा शब्द से पञ्चोपचार पूजा का भी ग्रहण हो सकता था किन्तु पुरश्चरण में पद्धति पूर्वक ही पूजा करने का नियम है अतएव पद्धति शब्द जानबूझ कर लिखा गया है।

पीछे के पञचांग को दिखाने का तात्पर्य यह है कि उपासक वैदिक तान्त्रिक सन्ध्या वन्दन के अनन्तर अपने इष्ट देवता की पद्धति पूर्वक पूजा कर पुन: सहस्रनाम आदि उपयुक्त कवच पटल और स्तोत्रों का पाठ का पूजा पाठ से निवृत्त होकर पुरश्चरण अंग भूत जप में बैठे।

पुरश्चरण का फल

परमानन्द तन्त्र में लिखा है कि साधक पुरश्चरण द्वारा मन्त्र-सिद्धि को प्राप्त कर अपनी सब कामानाओं को तत्तत्विधि द्वारा साधन कर सकता है। कुलार्णव के पञ्चदश उल्लास में लिखा है कि यदि साधक आधिव्याधियों से परिपूर्ण इस संसार में सिद्धि प्राप्त करना चाहता है तो उक्त पञ्चांगोपासना से (पुरश्चरण करने से) जप करके सिद्धि प्राप्त करे। पञ्चांगोपासना से यहां पूर्व दोनों प्रकार की पञ्चांगोपासना से अर्थात् दशाङ्ग.पुरश्चरण से तात्पर्य है। लिखा भी है-

पुरश्चरण योगेन मन्त्र सिद्धि समाश्लिषन्।
कामान् सुसाधयेत् सर्वान् विधिना परमेश्वरि।।
संसारे दु:खभूयिष्ठे यदीच्छेत् सिद्धिमात्मन:।
पञचाङ्ग.ोपासने नैव मन्त्रजापी व्रजेत् सुखम्।।

दीक्षा ग्रहण करने पर पुंरश्चरण न करने से साधक को पाप लगता है। कहा भी है:-

'पुरस्करोति यो नैकं तस्य विद्या पराङ्.मुखी?'

अर्थात् शिवजी पार्वती जी से कहते है कि, हे पार्वती जो उपासक गुरू से दीक्षा प्राप्त कर मन्त्र का कभी पुरश्चरण नहीं करता है उसकी विद्या, उसका इष्ट और मन्त्र दोनों ही उससे पराङमुख हो जाते है, अर्थात उसकी ओर से मुख फेर लेते है। विद्या का अर्थ इष्ट देवता (दशमहाविद्याओं में से कोई भी विद्या) तथा मन्त्र दोनों ही होते है।

पुरश्चरण के लिये प्रतिनिधि

पुरश्चरण की कर्त्तव्यता को अत्यन्त आवश्यक बताकर भगवान् सदाशिव पार्वती से कहते है कि हे पार्वती-यदि जो साधक दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त किसी रोग वश अथवा कार्यवश पुरश्चरण करने में स्वयं असमर्थ हो तो किसी योग्य उपासक को अपना प्रतिनिधि बनाकर उससे अपने मन्त्र का इष्ट-सिद्धि तथा मन्त्र-सिद्धि के लिए पुरश्चरण करवाये। अतएव परमानन्द तन्त्र में लिखा है-

'अशक्तश्चेत् देशिकेन ब्राह्मणेन च कारयेत्।।' इति। अपनी असमर्थता में साधक सबसे पहिले गुरूदेव से ही पुरश्चरण करने के लिये प्रार्थना करे। उनके स्वीकार न करने पर अथवा उनकी अनुपस्थिति में सब प्राणियों के हितैषी सद्गुण सम्पन्न ब्राह्मण से पुरश्चरण कराये।

पुरश्चरण के लिये स्थान

योगिनी हृदय आदि तन्त्र में लिखा है कि पुण्य क्षेत्र नदी तीर, गुहा (गुफा) पर्वत का ऊपरी भाग, तीर्थ, सागर सङ्गम तपोवन, बिल्वमूल, तराई, तुलसी कानन, वृषशून्य गोष्ठ स्थान, देवालय, समुद्र तट और अपना घर ये सभी स्थान पुरश्चरण के लिए प्रशस्त है। सूर्य अग्नि, गुरू, चन्द्र, प्रदीप, जल ब्राह्मण और गाय के निकट मन्त्र साधन करना

कल्याणकारी अथवा मङ्गल दायक है। जिस स्थान को देखकर मन प्रसन्न हो जावे वहीं पर पुरश्चरणादि कार्य करना चाहिए। कहा भी है:-

मनः प्रसादो यत्रास्ति तत्र पुण्ये समाचरेत्।
पुरश्चरणकं देवि पञ्चांग सर्व सिद्धिदम्।।

अपने घर में जप करना सौ गुना गोष्ठ में लाख गुना, देव मन्दिर में कोटि गुना और शिव सान्निध्य में जप करना अनन्त फल दायक होता है। म्लेंच्छ कर्षित स्थान और मृग सर्पादि से युक्त स्थान को छोड़कर पवित्र और अनिन्द्य तथा मनोरम स्थान को ही पुरश्चरण के लिए चुनना चाहिए।

पुरश्चरण के लिए भूमि परिग्रह

आदौ भूमि ग्रहं कुर्याति पूर्वस्मिन् दिवसे शिवे।
संकल्पामुक मन्त्रस्य पुरश्चरण सिद्धये।।
मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिध्यतामिति।
ग्रामे क्रोशमिततद्वत् नगरे द्विगुणं भवेत्।।
अन्यत्रतु यथेच्छं स्यात् पुण्यारण्यादिषुप्रिये।
आहारादि विहारार्थ तावतीं भुवमाश्रयत्।।

अर्थात् परमानन्द तन्त्र और वैशम्पायन संहितादि ग्रन्थों में लिखा है कि 'अमुक मन्त्र के पुरश्चरण की सिद्धि के लिए मै इस भूमि को ग्रहण करता हूं मेरी मन्त्रसिद्धि हो' इस मन्त्र को पढ़कर भूमि को ग्रहण करे। यदि पुरश्चरण किसी ग्राम में करे तो आहार विहार के लिऐ वेदों के चारों ओर एक कोस पर्यन्त जाना चाहिए और यदि नगर में करे तो एक कोस अथवा दो कोस तक आहार विहारादि के लिए जाना चाहिए। यदि नदी ह्रद (तालाब) और पवित्र बन आदि स्थानों में पुरश्चरण करे तो वहां अपनी इच्छानुसार स्थान ग्रहण करना चाहिए।

पुरश्चरण विधि

पुरश्चरण के लिए स्थान का निश्चय करने पर मण्डप रचना करे। पुरश्चरण में बैठने से पहिले क्षौरादि कर्म करे, तब वेदों के चारों दिशाओं में एक या दो कोस परिमित स्थान इच्छानुसार आहार विहारार्थ मानकर उसके बीच में कूर्म चक्रानुसार मण्डप निर्माण करे। उस दिन एक बार भोजन करे।

दूसरे दिन स्थानादि नित्य कर्मानुष्ठान समाप्त कर शुद्धता के साथ वेदिका के चारों ओर अश्वत्थ, यज्ञोदम्बर गूलर पाकर और बड़ इनमें से किसी एक वृक्ष की लकड़ी के बारह अंगुल के दश कीलक (कीले) निर्माण (एक बेत) प्रमाण बनाकर दश दिशाओं में गाढ़ देवे। सबसे पहले अष्ट दल बनाकर उसके मध्य में क्षेत्राधीश्वर का पूजन करे तदन्तर अष्ट दलों में क्रम से अनलाख्य, अग्नि, केश, कराल, घण्टाख्य मद्यकोष-पिशिताशन, पिशिताक्ष, और ऊर्ध्वकेश इन आठ क्षेत्रपालों की पूजा करे। "ॐ क्षौ श्री क्षेत्रपालाय नम:" यह क्षेत्रपाल का मन्त्र है, तथा क्षेत्रपाल का ध्यान निम्नलिखित है:-

नीलाञ्जनाद्रि निभमूर्द्ध पिशंगकेशं।
वृत्तोग्र लोचनमुपात्त गदा कपालम्।।
आशाम्बरं भुजग भूषणमुग्र द्रंष्ट्रम्।
क्षेत्रेशमद्भुतमहं प्रणमामि देवम्।।

क्षौं बीज से षडङ्ग न्यास तथा पूर्वोक्त ध्यान से उनका ध्यान करे और अन्त में पञ्चोपचार पूजन करे। नीचे लिखे मन्त्र से माष भक्त बलि प्रदान करे, मन्त्र-"ऐहि बलि कुरू कुरू, भक्षय भक्षय, तर्पय तर्पय, विघ्नान् नाशय नाशय, महाभैरव क्षेत्रपाल बलि गृहणगृहण स्वाहा।"

तदुपरान्त अञ्जलि बांधकर-

"ॐ तीक्ष्ण दंष्ट्र महाकाय कल्पान्त दहनोपम:।

भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञ, दातु मर्हसि"।।

इस मन्त्र से अनुमति के लिये प्रार्थना करे। इसके अनन्तर वास्तु-पुरूष और ईशान का भी पूजन करे।

इसके बाद गाड़े हुए दश लोकपालकों के कीलकों को अस्त्र मन्त्र द्वारा अभिषिक्त कर और उनमें लोकपालकों का तथा पूर्वोक्त मन्त्र से (अस्त्र मन्त्र) पञ्चोपचार पूजन कर निम्नलिखित 43 तैतालीस अक्षरों के मंत्र से माष भक्त बलिदान प्रदान करे। सबसे पहले इन्द्र के लिये बलि देवे, मन्त्र:- एहीन्द्र पूर्व दिग्भागे पूजितो वृक्ष कीलके माँ पालय, निर्विघ्न कार्य साधय, साधय माष भक्त बलि गृहण गृहण स्वाहा" इस मन्त्र के ही अनुसार अन्य दिग्पालों के मन्त्र भी बन जाते है। केवल दिशा और देवता का नाम जोड़कर जिस देवता का मन्त्र बनाना हो उसी का मन्त्र बन जाता है। जैसे कि लिखा भी है:-

तत्तद्दिशा देव नाम संयोगादन्य मन्त्रका:। इति।

किन्तु यदि पुरश्चरण किसी देवालय में न करना हो तो दिग्पालों के आवाहन पूजन की आवश्यकता नहीं होती है। दिग्पालों के दश कीलकों को गाड़ने का मन्त्र निम्नलिखित है:-

ॐ ये चात्र विघ्नकर्तारो भुविदिव्यन्तरिक्षगा:।

विघ्न भूताश्च ये चान्ये मम मन्त्रस्य सिद्धि षु।।

मयैतत् कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरत:।

अप सर्पन्तु ते सर्वे निर्विघ्नं सिद्धिस्तु मे।।

इस मन्त्र से कीलकों को दश दिशाओं में गाड़ देना चाहिये। क्षेत्राधीश और लोकपालों की पूजा के अनन्तर सर्व विघ्न विनाशनार्थ गणेशादि पञ्चाङ्ग पूजन करे।

गायत्री जप

विद्याधराचार्य ने लिखा है कि अगले दिन प्रात: स्नानादि नित्य

क्रिया समाप्त कर ज्ञात और अज्ञात पापों के लक्ष के लिये गायत्री का एक हजार जप करे। गायत्री से यहाँ पर जिस देवता के मन्त्र का पुरश्चरण करना हो उसकी ही गायत्री का तात्पर्य है, अत: उसकी ही गायत्री का जप करना चाहिये। लिखा भी है:-

आदौ शुभदिने केशान् वापयित्वा महेश्वरि।
अयुत प्रजपेत्तत्र तद् गायत्रीं समाहित:।।

तेनाधिकारी भवति पुरश्चरण साधने। (परमानन्द तन्त्र) गायत्री जप के अनन्तर धनवस्त्र और आभूषणों से गुरूदेव को तथा दक्षिणादि से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर उनकी अनुमति लेकर जप में प्रवृत्त होवे।

प्रात: स्नात्वात् सावित्रीं जपेत् यश्च सहस्रकम्।
त्रिसहस्रं सहस्रं वा जपेदष्टोत्तरं शुचि:।

इस यामल वचन के अनुसार प्रात:काल स्नान करके जो सावित्री जप का विधान है वह अधिक पाप की आशङ्का होने पर माननीय है। यदि उक्त प्रकार की कोई आशङ्का न हो तो पूर्वोक्त गायत्री का ही जप करना चाहिये। गायत्री जप से पूर्व निम्नलिखित संकल्प करे:-

संकल्प

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्र: श्री अमुक शर्मा (वर्मा गुप्त:) ज्ञाताज्ञात पाप क्षय काम: अष्टोत्तर सहस्र गायत्री जपमहं करिष्ये।

इस दिन उपवासी, फलाहारी अथवा हविष्याशी होकर रहे।

पुरश्चरण का पारम्भ

अगले दिन उषाकाल में स्नानादि कर स्वस्ति वाचक पूर्वक संकल्प करे:-

"ॐ अद्येत्यादि अमुक गोत्र: श्री अमुक शर्मा (वर्मा, गुप्त:) अमुक देवताया: अमुक मन्त्र सिद्धि प्राप्ति प्रतिबन्धका शेष दुरितक्षयपूर्वक तन्मन्त्र सिद्धि काम: अद्यारम्भ यावता कालेन सेत्स्यतितावत्कालं अमुक मन्त्रस्य इयत्संख्याकं/जप तद्दशांश

होम तद्दशांश तर्पण तद्दशांशाभिषेक तद्दशांश ब्राह्मण भोजन पुरश्चरणमहंकरिष्ये।"

तदन्तर भूत शुद्धि प्राणायामादि कर तद्देवता सम्बन्धी मुद्रायें बांधकर अपनी पद्धति में बताई हुई विधि के अनुसार इष्ट देवता की पूजा करे और तेजोरूपिणी देवता का हृदय में ध्यान कर प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न, पर्यन्त जप करे। जप समाप्त होने पर होम और तर्पण करे। कुलार्णव में लिखा है कि जल में इष्ट देवता का आवाहन कर जल रूप पाद्यादि उपहारों से परिवार गण सहित इष्ट देवता की यथा विधि पूजा करे और परिवार गण का एक अञ्जलि द्वारा तर्पण करे।

होम की दशांश संख्या जितनी हो उतनी बार कर्पूर मिश्रित तीर्थोदक द्वारा तर्पण करे। तर्पण के विषय में शाक्तानन्द तरंगिणी में लिखा है कि पहले मूल मन्त्र उसके बाद द्वितीया विभक्ति में देवता का नाम (देवी का नाम) अथवा विष्णु शिव आदि देवता का नाम उसके अनन्तर 'तर्पयामि स्वाहा' इस मन्त्र से यथा विधि संख्यानुसार गुरू पंक्ति का तर्पण कर मूल देवता का तर्पण करे। मन्त्र इस प्रकार बनावे "ॐ नमः शिवं तर्पयामि स्वाहा।" लिखा भी है:-

तर्पयेत्ता परां देवीं तत्प्रकारमिहोच्यते।
तर्पयित्वा गुरूमादौ मूल देवींच तर्पयेत्।
मूलान्ते नाम चोच्चार्य तर्पयामि ततः परम्।
स्वाहान्ते तर्पयेन्मंत्री यथा संख्या विधानतः।।

गौतमीय योगिनी हृदय में लिखा है कि द्वितीयान्त नामोच्चारण कर एक एक अञ्जलि द्वारा रश्मि वृन्द का तर्पण कर मूल देवता का तर्पण करे।

अन्यत्र भी लिखा है कि यदि नदी समीप हो तो साधक उसमें जाकर तर्पण करे, अथवा पूजा गृह में एक बड़े ताम्र पात्र में जल भर कर तर्पण करे। नदी हो तो नदी में नाभि मात्र जल में खड़े होकर जल

में इष्ट देवता के मन्त्र की भावना कर उसमें सूर्य मण्डल से तीर्थो का आवाहन कर होम की दशमांश संख्या का अपने इष्ट देवता को तर्पण करे यदि ताम्र पात्र करना हो तो उसे जल से भरे और उसमें कर्पूरादि अष्ट गन्ध तथा दूर्वा छोड़कर उस जल से तर्पण करे।

तर्पण पदार्थ

विशुद्धेश्वर तन्त्र में लिखा है कि कर्पूर युक्त जल से अथवा तीर्थ जल अथवा गुरूपदिष्ट प्रणाली से तर्पण करे। तन्त्रागमों में लिखा है तीर्थ जल दुग्ध घृत मधु अथवा गन्धोदक से तर्पण करे। इन सब द्रव्यों के साथ कालागरू कालाअगर, मिलाकर तर्पण करने से साधक सम्पूर्ण जगत को वश में कर लेता है। चन्दन मिश्रित जल द्वारा तर्पण करने से सौभाग्य प्राप्ति होती है। केशर मिश्रित जल द्वारा तर्पण करने से सारा जगत बाध्य होगा। शर्करादि मिश्रित जल द्वारा तर्पण करने से साधक बृहस्पति की समता करता है। कर्पूर मिश्रित जल द्वारा तर्पण करने से देवता साधक के प्रति आकर्षित होते है। रोचन मिश्रित जल के तर्पण से साधक को सब प्रकार की मुक्ति मिलती है। तर्पण देवी का ध्यान कर उसके मुख में करना चाहिये।

अभिषेक (मार्जन)

अपने को इष्ट देवता मान कर पुरश्चरण कर तथा तन्मय होकर और उसका चिन्तन कर, पहिले मूल मन्त्र उसके बाद द्वितीयान्त देवता का नाम उसके अन्त में अभिषिञ्चामि नमः। अर्थात "ह्रीं भुवनेश्वरीं अभिषिञ्चामि नमः" इस प्रकार जिस देवता का पुरश्चरण करना हो उसका अभिषेक मन्त्र बनाकर मस्तक में मूल मन्त्र का ध्यान करता हुआ अपनी देह में यथा संख्य अभिषेक करे। इसके अनन्तर अपने देह में उप देवताओं तथा आवरण देवताओं के सहित देवी का ध्यान करता हुआ यथा संख्य अभिषेक करे। तदन्तर प्राणादि एक एक वायु का अभिषेक करे।

कुलार्णव में लिखा है कि मूल मन्त्र के अनन्तर नमः जोड़कर देवता के नाम द्वितीया विभक्ति बनाकर 'अहं अभिषिञचामि' इस प्रकार मन्त्र बनाकर कलश (कुम्भ) मुद्रा से दूर्वा द्वारा अपने मस्तक पर अभिषेक करे। मन्त्र इस प्रकार बनेगा 'मूल नमः अमुक देवता-महमभिषिञ्चामि' गौतमीय तन्त्र में उक्त वाक्य इस प्रकार है- मूलं नमोहममुक देवतामभिषिञ्चामि।"

नील तन्त्र में शक्ति विषय में अभिषेक मन्त्र इस प्रकार बताया गया है-"मूल अमूक देवतामभषिञ्चामि नमः" किसी भी प्रकार से करो सबका तात्पर्य एक ही है। ऊपर की अभिषेक विधि विशुद्धेश्वर तन्त्र से ली गई है यथा-

आत्मानं देव बुद्धयातु सम्पूज्य तन्मयः सुधीः।
मूलविद्यां समुच्चार्यं तदन्ते देवाऽभिधाम्।।
तदन्तेचाभि सिञ्चामि नमोन्ते चाभिषेचनम्।
इत्युच्चार्य स्वशिरसि चिन्तयित्वा स्वमन्त्रकम्।।
अभिषेक स्वीय संख्यं विषाय तदनन्तरम्।
तत्र चिन्तयेद्देवी साङ्गावरण देवताम्।।
क्षिपेत्तोय यथा संख्य प्राणात् सिञ्चेत् सकृत् सकृत्।

ब्राह्मण भोजन

उक्त प्रकार से अभिषेक कर उसका दशांश ब्राह्मण भोजन करावे। ब्राह्मणों को देवता स्वरूप माने। यामल में लिखा है-जिस देवता के मन्त्र का पुरश्चरण किया जाय उस देवता के उपासक ब्राह्मणों को देवता स्वरूप जानकार भोजन करावे, तथा कुमारियों को भी भोजन करावें। कुमारियों को भोजन न कराने से साधक अन्त मे पशुत्व को प्राप्त होता है। ब्राह्मण भोजन के साथ साथ कुमारी और सुवासिनी भोजन भी करावे यह अत्यावश्यक है। इष्ट मंत्र से दीक्षित तथा अन्य विद्याओं के दीक्षित, शैव, वैष्णव, गाणपत्य आदि ब्राह्मणों को भोजन

कराना उत्तम पक्ष है। दीक्षितो के न मिलने पर अदीक्षित ब्राह्मणमात्र अविद्यो का सविद्या वा ब्राह्मणो माम की तनु: के अनूसार उपादेय है।

गुरु पूजन

ब्राह्मण भोजन के अनन्तर नाना प्रकार के वस्त्रालंकारों द्वारा भक्ति युक्त होकर गुरुदेव का पूजन करे और यथा शक्ति तथा विभव के अनुसार गुरुदेव को दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे।

तदनन्तर रात्रि में महापूजन करे। इस प्रकार पुरश्चरण करने से साधक मन्त्रसिद्धि को प्राप्त करता है। तन्त्रो में लिखा है कि ऐश्वर्य के होते हुये भी जो व्यक्ति विधि के अनुसार कार्य नही करता है वह उक्त कार्य का फल प्राप्त करने में समर्थ नही होता है। ऐसे व्यक्ति को मुनियों ने देव द्रोही कहा है जैसे कि -

लिखा है - **ब्राह्मणान् भोजयेदेवि तथैव च कुमारिका:।**
साधक: पशुतामेति कुमारी भोजनादृते।।
तत्तन्मन्त्र युतान् विप्रान् भोजयेत्‌देवता धिया।
तत: सम्पूजयेद्‌भक्तया सम्भारैर्विविधैर्गुरुम्।।
दक्षिणां गुरवे दद्यात यथा विभव विस्तरै:।।
दत्वा च साधकश्चेति महापूजां समाचरेत्।।
सिद्ध मन्त्रो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारण।
विभवे सति यो मोहात् न कुर्याद्विधिविस्तरो।
नैतत् फलमवाप्नोति देवद्रोही स उच्यते।।इति।।

पाठकों को ध्यान देना चाहिए कि यदि गुरुदेव सन्निहित न हो अथवा दिवंगत हो गये हो तो उनकी दक्षिणा गुरु पत्नी, गुरु पुत्र, गुरु पौत्र तथा उनके वंशजो को अवश्यमेव देनी चाहिए। अनुष्ठान के अतिरिक्त अन्य पुण्य कार्यो में भी गुरुदेव का भाग अवश्यमेव करना आवश्यक है।

असमर्थता से पुरश्चरण- होमादि के बदले में विधान

मुण्डमालागम तन्त्र में लिखा है कि यदि असमर्थता के कारण

पुरश्चरण का कोई अंग न कर पावे तो उसका दूना जप करे, इस प्रकार करने से पुरश्चरण अगं हीन नही होता है। रुद्रयामल कहता है कि, होम कर्म करने में असमर्थ होने पर ब्राह्मण दूना जप करे और क्षत्रिय तिगुना और वैश्य चौगुना जप करे।

योगिनी हृदय में लिखा है कि होम करने में असमर्थ होने पर ब्राह्मणादि तीनो वर्ण तथा उनकी स्त्रियां होम संख्या का दूना जप करे। यदि शूद्र भी पुरश्चरण कर्त्ता हो तो जिस वर्ण के व्यक्ति से उसने दीक्षा ग्रहण की हो उस वर्ण की स्त्री की जप संख्या उसके लिए नियत है। अर्थात ब्राह्मण पत्नी की संख्या दुगुनी, क्षत्रिय पत्नी की तिगुनी, और वैश्य पत्नी की चौगुनी जप संख्या निश्चित है।अतः शूद्र के लिए जप संख्या अपने गुरू ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के अनुसार क्रम से दुगुनी और तिगुनी और चौगुनी होगी।

विष्णु के उपासक ब्राह्मण क्षत्रियों और वैश्य को यथा क्रम होम संख्या का चतुर्गुण षट्गुण और आठ गुण जप करना लिखा है। कहीं कहीं द्विगुण और कहीं कहीं चतुर्गुण जप करने का विधान है।

यामल मे यह भी लिखा है कि यदि पुरश्चरण में कोई अंग हीन हो अर्थात असमर्थतावश साधक होमादि अनुष्ठान न कर सके तो उसकी पूर्ति जप करने से कर लेनी चाहिए। अनुष्ठान अंग हीन बनाना अनुचित है। अतः जप के द्वारा अथवा होमादि कर्मो के द्वारा उसे पूर्ण करना चाहिये। उत्तम पक्ष यही है कि अनुष्ठान होम तर्पण मार्जनादि क्रियाओं से सम्पादित किया जावे। किसी प्रकार असमर्थता आने पर होमादि के बदले में दुगुनी चौगुनी जप संख्या का विधान है। योगिनी हृदय रूद्रयामल और मुण्डमाला के वचन नीचे लिखे जाते है–

यद्यदङ्ग विहीनंस्यात् तत्तस्य द्विगुणो जपः।
कर्त्तव्य साङ्ग सिद्धयर्थ तदशक्तिश्च भक्तितः।।
होम कर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः।
इतरेषांतु वर्णानां त्रिगुणादि समीरितम्।।

ब्राह्मणादि त्रिवर्णानां स्त्रीणां संख्या विधीयते।
यंवर्णमाश्रित: शूद्रो दीक्षां कुर्यात् यथेप्सितम्।।
तस्य स्त्रीणान्त् या संख्या सा संख्यातस्य विद्यते।
वैष्णवानां चतुर्वर्णानां चतुर्गुण षट्‌गुणाष्टगुणं बोधव्यम्।।

कूर्मचक्र

पुरश्चरण विधि में पहले लिखा है कि कूर्म चक्रानुसार निर्माण करे अत: कूर्म चक्र का विषय शाक्त क्रम के अनुसार निम्नोक्त है-

विशेष: कथ्यते चात्रकूर्म चक्रस्य लक्षणम्।
रेखा चतुष्टयं कार्य पूर्वपश्चिमयोगत:।।32।।
उत्तराद्दक्षिणं यान्नव कोष्ठ यथा भवेत्।
पूर्वाग्नि याम्य निऋति प्रतीच्यां पञ्चवर्षकम्।।33।।
मरूत्कुवेर शम्भौच यादि वर्णाश्चतुश्चत:।
ल, क्षौ,क्रमात् समालिख्य साधको वीरवल्लभ:।।34।।
मध्यकोष्ठ तत: कार्य पूर्ववन्नवधा क्रमात्।
पूर्वादि शम्भुपर्यन्ते येष्वेष्वक्षरमालिखेत्।।35।।
क्षेत्राद्यक्षर वर्णन्तु यत्र कोष्ठे प्रदर्श्यते।
दीपस्थानं तदेवस्यात्तत्र सिद्धिरनुत्तमा।।36।।
दीपस्थानं बिना योहि जप होमं समाचरेत्।
तत्सर्व निष्फलं याति चाभिचाराय कल्प्यते।।37।।

पूर्व से पश्चिम की ओर चार रेखा तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ भी चार रेखा खींचे जिससे नव कोष्ठ बन जावे। पूर्व दक्षिण निऋति और पश्चिम में पंच वर्गो को क्रम पूर्वक लिखे। वायुकोण, उत्तर और ईशान में यदि वर्ण (य,र,ल,व,) चार चार लिखे तथा ल और क्ष को भी क्रम से लिखे। पूर्ववत् मध्य में भी चार रेखा करके नव कोष्ठ बना लेवे। पूर्व से ईशान पर्यन्त आकारादि क्रम से सब में दो दो अक्षर लिखे चक्र में क्षेत्र का आदि अक्षर वर्ण जिस स्थान में

(कोष्ठ) दीख पड़े वही दीप स्थान है उस स्थान पर दीप धरने से अपूर्व सिद्धि प्राप्त होती है।

दीप स्थान के बिना जो होम करता है वह सब निष्फल और अभिचार के लिये ही होता है।

तन्त्र सार लिखता है कि जिस स्थान में पुरूष दीप्यमान होता है उसे दीप स्थान कहते है और दीप स्थान का आश्रय लेकर जो कर्म किया जाता है वह फलप्रद होता है। अत: जप पूजादि के लिये मनोनीत स्थान में निम्न प्रकार से कूर्म चक्र बनावे। इस चक्र के जिस कोष्ठ में उक्त स्थान (ग्राम नगर आदि) के नाम का पहला अक्षर हो उसे कूर्म का मुख समझे। मुख के दोनों ओर के कोष्ठ उसके हाथ, हाथ के नीचे वाले दो कोष्ठ उसकी कुक्षियां कुक्षियों के नीचे वाले दो कोष्ठ उसके पैर और बाकी कोष्ठ उसकी पूँछ जाननी चाहिये।

इसी प्रकार मध्यवर्ती नौ कोष्ठों का भी विभाजन कर ले। मण्डप के जिस भाग में कूर्म का मुख हो वहीं बैठकर जप पूजादि कार्य करने में मन्त्र सिद्ध होता है। हाथ वाले भाग में कार्य करने से साधक अल्पजीवी कुक्षि में उदासीन, पैर में दुखी और पूंछ में करने से बन्धन तथा उच्चाटनादि पीड़ित होता है।

नित्योत्सवे कूर्मचक्र लक्षणम्

समीकृते भूतले प्राक् प्रत्यगायता: दक्षिणोत्तरायताश्चतस्रश्चतस्रो रेखा विलिख्य नव कोष्ठानि विधाय तत्र पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रमेण अष्टसु कोणेषु क च ट त प य श तार स्थान अष्ट वर्गान् अकारादि स्वर द्वयं च विलिख्य मध्य कोष्ठे श्रीकारं विलिखेत्। इदञ्च कूर्म चक्रं क्षेत्र ग्राम गृह भेदात त्रिविधम्। तत्र क्षेत्र ग्रामयो: तत्तन्नामाद्यक्षर युक्तं कोष्ठं मुखं कूर्मस्य। एतदेवास्य दीप स्थान मुख्यते। गृहेतु गृहपते नामाद्यक्षर युक् कोष्ठं मुखम् तत्पार्श्व द्वय गत कोष्ठद्वय हस्तौ। तदध: स्थितंकुक्षि: तद्ध: स्थितौतु चरणौ। कुक्षिमध्यगतं कोष्ठं पृष्ठम्।

कूर्म चक्रम्
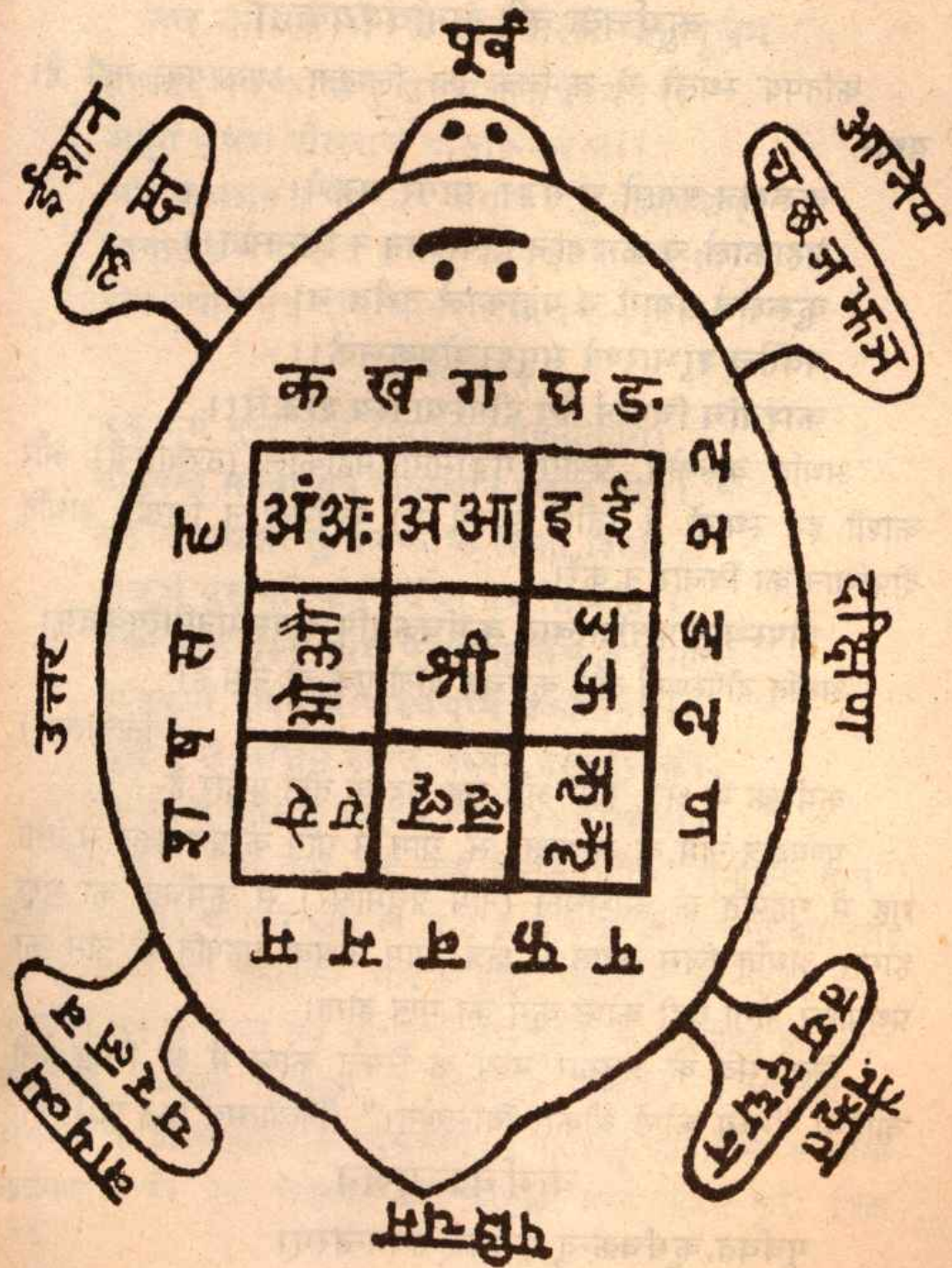
चरणमध्यगतं कोष्ठञ्च पुच्छं इति विवेक:। एदमुक्त प्रकारस्य क्षेत्रादि विभावितस्य कूर्मस्य मुखेपृष्ठेवा जपे होमेच सर्वार्थ सिद्धि करयो: तनौ कोष्ठान्तराषि अनुपयुक्तानीति। (163) पृष्ठे।

कूर्मचक्र की अनावश्यकता

कतिपय स्थलों में कूर्मचक्र का लिखना आवश्यक नहीं है। यथा-

कुरूक्षेत्र प्रयागे च गङ्गा-सागर सङ्गमे।
महाकाले च काश्यांच दीपस्थान न चिन्तयेत्।।
कुरूक्षेत्रे प्रयागे च महाकाले तथैव च।
पर्वतेच शुभारण्ये समुद्रस्योपकूलके।।
काश्यांच चिन्तनं नैव दीपस्थानस्य शङ्करि।।

अर्थात् कुरूक्षेत्र, प्रयाग गङ्गासागर,महाकाल (उज्जयिनी) और काशी इन स्थानों में (तीर्थ स्थानों में) कूर्मचक्र न लिखें। अर्थात् दीपस्थान का विचार न करें।

दीपस्थानोपलक्षित्वात् कूर्मचक्रमपि दीपस्थानमित्युक्तम्।

अर्थात् दीपस्थान और कूर्मचक्र दोनों एक ही नाम हैं।

-नित्योत्सव)

कूर्मचक्र के क्षेत्र, ग्राम और गृह भेद के तीन प्रकार है--

पुण्यक्षेत्र नाम के आद्याक्षर से, ग्राम में ग्राम के प्रथमाक्षर से तथा गृह में गृहपति के अभिधान (नाम प्रथमाक्षर) से कूर्मचक्र का मुख होगा। अर्थात् जिस कोष्ठ में क्षेत्र, ग्राम अथवा गृहपति के नाम का प्रथमाक्षर होगा वही कोष्ठ कूर्म का मुख होगा।

नित्योत्सव के अनुसार मध्य के रिक्त कोष्ठ में श्री लिख देनी चाहिये। "मध्य कोष्ठे श्रीकारं विलिखेत्।" (नित्योत्सव 163 पृ0)

कूर्मचक्र पूजन

पूर्ववत कूर्मचक्रन्तु पूजयेत् तदनन्तरम्।

नव कोष्ठेषु पूर्वादि स्वामिनः पूजयेत् क्रमात्।।
विलिखेत् काद्यष्ट वर्गान् मध्ये कोष्ठेतु पूर्वतः।
द्वन्द्वं स्वराणां संलिख्य कूर्म भक्तया समर्चयेत्।।

नव कोष्ठों में नौ क्षेत्रपालों का पूजन

प्रागादि नव कोष्ठेषु क्षेत्रपालान् नवर्चयेत्।
अमृतं वृषभं शैलराजं वासुकिमेव च।।
अर्थ कृच्छक्ति पद्मादि योगीन शङ्ख महादिकम्।
छायाछत्र गणं चेति क्रमात् सम्पूजयेत् बुधः।।
दीप स्थानं तत्र देवि जानन् संसाधयेन्मनून्।।

दीपस्थान

तत्र कूर्म मुखं देवि दीपस्थानं प्रकीर्तितम्।
दीपयन्ते मनवो यत्र दीपस्थानं ततस्तु तत्।।
गृह नामाद्यक्षरन्तु यत्र कोष्ठे स्थितं शिवे।
तत्कूर्म मुखमुद्दिष्टं निर्विघ्नं तत्र सिध्यति।।
मध्ये पृष्ठं तस्य चाथ पुच्छं पार्श्वेषु वै क्रमात्।
हस्तयुग्मं पादयुग्मं पार्श्वयुग्मं प्रकीर्तितम्।।
मुखे पृष्ठे चोत्तमं स्यात् मध्यमं हस्तयुग्मके।
अन्यत्र तु निषिद्धं स्यादेष देवि त्रिधास्थितः।।

देश कूर्म, ग्राम कूर्म, गृह कूर्म मितीश्वरीति "परमानन्द तन्त्रे" अर्थात कूर्मचक्र बनाकर और क च ट त प य श आदि वर्गो को तथा दो दो स्वरों को लिखकर भक्ति पूर्वक कूर्मचक्र का पूजन करे। तदनन्तर पूर्व से लेकर नव कोष्ठों में क्रम पूर्वक नौ क्षेत्रपालों का पूजन करे। नौ क्षेत्रपाल 1 अमृत, 2 वृषभ, 3 शैलराज, 4 वासुकि, 5 अर्थकृत, 6 शक्तियोनि, 7 पद्मयोनि, 8 महाशङ्ख योनि, और 9 छाया छत्रगण ये है। पुनः दीपस्थान को जानकर मन्त्र साधन करें। जिस

स्थान पर साधक को मंत्र प्रदीप्त होते है। उस स्थान का नाम दीपस्थान है।

जिस कोष्ठ में ग्राम के नाम का प्रथमाक्षर अथवा क्षेत्र के नाम का प्रथमाक्षर या गृहपति के नाम का वा देश-के नाम का प्रथमाक्षर होता है।वहीं पर कूर्म का मुख होता है और वहां पर मन्त्र निर्विघ्न सिद्ध होता है। मध्य उसका पृष्ठ भाग है और उसके पार्श्व भाग-उसकी पूंछ है। उसमें क्रम से हस्त युग्म, पादयुग्म, और पार्श्वयुग्म कहे जाते हैं। मुख और पृष्ठ में बैठकर जप करना उत्तम है। हस्त युग्म में बैठकर जप करना मध्यम फल दायक है, इसके अतिरिक्त स्थान निषिद्ध है। यह देश कूर्म, ग्राम कूर्म और गृह कूर्म के भेद से तीन प्रकार का होता है। कुरूक्षेत्र, प्रयाग, महाकाल (उज्जैन), पर्वत, पुण्यारण्य और समुद्र तट में दीपस्थान का विचार नहीं किया जाता है।

आसन

मन्त्र सिद्धि के लिये सबसे उत्तम आसन शक्ति-क्रम में निम्नलिखित आसन बताये गये है।

मृदु चूड़कमासीनश्चान्येषु कोमलेषु वा।
विष्टरेषु समाश्रित्य साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।।37।।
अर्वाक् षण्मासतो गर्भच्युतमाहुर्मृदुं बुधाः।
चूड़ोपनयनैर्हीनं मृतं तं चूड़कं बिदुः।।38।।
निवृत्तचूड़कोवालोहीनोपनयनः पुमान्।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेष कोमलं बिदुः।।39।।
मृताऽऽसनं विना योहि यजे त्रिभव तारिणीम्।
तावत्कालं नारकीस्यात् यावत् आभूत् संल्पवम्।।40।।
मृताऽभावे विष्टरञच शवरूपं प्रकल्पयेत्।

अर्थात् मृदु चूडक और कोमल, इनमें से किसी-पर बैठकर तथा

अन्य आसनों को तद्रूप कल्पित कर साधना करने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। छः मास के पूर्व जो गर्भ गिरता है उसकी मृदु संज्ञा होती है। मुण्डन तथा उपनयन के पूर्व जो बालक मर जाता है उसके शव की चूडक संज्ञा होती है, जिस बालक का मुण्डन हो गया हो परन्तु यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो, ऐसे पञ्चम वर्ष के भीतर मरे हुए बालक के शव की कोमल संज्ञा है। शवासन के बिना जो त्रिभव तारिणी भगवती का भजन करता है वह महाप्रलय पर्यन्त नरकगामी होता है। यदि आसन के लिये उपर्युक्त शव सुलभ न हो सके तो कुश के बने हुये विष्टर को शव रूप से कल्पित करे और आसन के नीचे रखे। अतएव तान्त्रिक आचार्य आसन के नीचे कुश का विष्टर बनाकर अवश्यमेव रखते हैं। पुरश्चरणकर्त्ता को भी आसन के नीचे विष्टर अवश्यमेव रख लेना चाहिये।

आसन प्रकार

हंस माहेश्वर में लिखा है कि कोमल पद्मासन कुशासन, दारूआसन और चर्मासन शुद्ध तथा कार्य सिद्धि दायक है। लोम युक्त चर्मासन पर साधनादि करने से सारा कार्य नष्ट हो जाता है। काम्य कर्म में कम्बलासन और विशेषकर रक्त कम्बलासन श्रेष्ठ है। ज्ञान सिद्धि के लिये कृष्णाजिन (कृष्ण मृगचर्म) मोक्ष तथा श्री कामना में व्याघ्र चर्मासन और मन्त्र सिद्धि के लिये कुशासन प्रशस्त है। मुक्तिकासन, दुःख, काष्ठासन, दौर्भाग्य, वंशासन दारिद्र्य, पाषणासन रोग पीड़ा, तृणासन यशोहानि और पत्रासन चित्त वैकल्य्य करता है, और वस्त्रासन से जप,ध्यान, तथा तप की हानि होती है। कुशासन के ऊपर वस्त्र विछाकर साधन करने से रोग का निवारण होता है। योगिनी तन्त्र में लिखा है कि कृष्णाजिन पर अदीक्षित गृहस्थ को नही बैठना चाहिये। इस आसन पर ब्रह्मचारी, वनवासी और भिक्षुक को ही बैठना चाहिये। आगम कल्पद्रुम के अनुसार मेष, व्याघ्र, गज, उष्ट्र,

और सर्प के चर्मासन षड्कर्म में विहित है।

जो उपासक सर्वदा व्याघ्रासन में बैठकर जप करता है वह भगवती के तुल्य हो जाता है इसमें सन्देह न करना चाहिये। चित्र व्याघ्र के चर्म के ऊपर बैठकर काली मन्त्र के जपने से नाना प्रकार की वाक् सिद्धि प्राप्त होती है, अष्ट व्याघ्र के आसन के ऊपर बैठकर एक लक्ष जप करने से साधक त्रिलोकीश्वर बन जाता है। बल्ली जाति के व्याघ्र चर्म पर बैठकर जप करने से देव दुर्लभ सिद्धि प्राप्त होती है। धूसर व्याघ्र चर्मासन पर बैठकर मन्त्र जपने से साधक त्रिकालज्ञ बनता है। बिन्दुमान व्याघ्र चर्मासन पर बैठकर साधना करने से साधक शत्रु राज्य को जीत कर सर्व कार्य-सिद्धि प्राप्त करता है महाव्याघ्र चर्मासन पर बैठकर एक मास पर्यन्त महाविद्या जप से साधक सिद्धि प्राप्त कर खेचर बन जाता है। महाविद्या से काली, तारा, षोडशी आदि महाविद्याओं का ग्रहण करना चाहिये। महाराज व्याघ्र चर्मासन पर बैठकर कालिका के उपासक को प्रत्यह मन्त्र जप पाठ पूजा करना श्रेयस्कर लिखा हुआ है। रोमश व्याघ्र के चर्मासन पर तीनों संध्याओं में तीन सहस्त्र जप करनें से साधक एक पक्ष में ही खेचर सिद्धि को प्राप्त होता है। लिखने का तात्पर्य यह है कि व्याघ्र चर्मासन और मृग चर्मासन संध्या पाठ, पूजा, जप और पुरश्चरण के लिये सिद्धि दायक है।

व्याघ्र चर्मासन के समान कुञ्जरासन (हाथी के चर्म का आसन) अश्वासन, उष्ट्रासन, मेषासन आदि आसनों का भी विधान है।

"तदभावे महेशानित्वङ्गनिःसारण योग्यता"

अर्थात जिन पशुओं के ऊपर बैठकर जप करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता है उनके चर्म के आसन पर बैठकर जप करने से भी वही फल प्राप्त होता है। अतएव मन्त्र शास्त्र में व्याघ्रासन,

आश्वासन, कुञ्जरासन, उष्ट्रासन, कुक्कुटासन आदि आसनों का विधान है। जिनके चर्म आसन में बैठकर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

आसनों के विषय में विशेष जानकारी के लिये सम्वत् 2009 के पौष की 11 संख्या 10 वाली चण्डी पत्रिका के 259 वे पृष्ठ पर आसन शीर्षक हमारे लेख को पढ़ने की कृपा करें। उससे पाठकों को सब प्रकार के आसनों का पूरा ज्ञान प्राप्त होगा।

जप-माला

आसन शुद्धि होने पर पुरश्चरण में जप के लिये माला की सबसे बड़ी आवश्यकता होती है। अत: पञ्चाङ्ग पुरश्चरण में जप ही मुख्य है और वह बिना माला के नहीं हो सकता। अत: जप के लिये माला सबसे आवश्यक वस्तु है, अतएव अब हम माला के विषय पर प्रकाश डालने की चेष्टा करते हैं।

वर्ण माला (अक्षर माला)

मन्त्र शास्त्र में वर्णमाला (अक्षर माला) मणियों की माला (मनकों की माला) और करमाला (अंगुलिपर्वमाला) अर्थात् अंगुलियों की पोरियों की माला के भेद से तीन प्रकार की माला बताई गई हैं।

वर्णमाला भी शतीमाला और अष्टोत्तरशतीमाला के भेद से दो प्रकार की होती है। अष्टोत्तरशतीमाला भी दो प्रकार की हैं। शतीमाला वर्णमाला के पचास अक्षरों के अनुलोम विलोम से बनती है। शतीमाला पर ' अ क च ट त प य श' इन आठ वर्गाक्षरों को जोड़ देने से अष्टोत्तर शती (एक सौ आठ अक्षरों की) माला हो जाती है।

अष्टोत्तर शतीमाला का दूसरा प्रकार पूर्वोक्त पचास वर्णो के साथ 'ही ऐं क्लीं श्रीं' इन चार बीजाक्षरों के जोड़ देने से तथा चौवन अक्षरों के अनुलोम से बन जाता है। इस प्रकार अक्षर माला के तीन

भेद होते हैं। इस माला का मेरू क्षकार माना जाता है। यही माला सबसे श्रेष्ठ माला है। यह अक्षर माला अर्थात् वर्णमाला के ये अक्षर विसतन्तु (कमलनाल के तन्तु) के समान अत्यन्त सूक्ष्म (वारीक) चित्रणीनाड़ी से गुथी हुई है, यह मानना चाहिये। इस वर्णमाला का ध्यान निम्नलिखित प्रकार से करना चाहिये।

अन्तर्विदुम-भासमान भुजगा सुप्तोत्थवर्णोज्ज्वलाम्।
आरोहामवरोहिकां शतमयीं वर्गाष्टकाष्टोत्तरीम।।
साक्षात् ब्रह्ममयीं 'क्ष' मेरू सहितां श्रीमातृकाक्षावलां।
विद्यां नौमि समस्त मन्त्र जननीं ज्ञानैक दीपांकुराम्।।

इस ध्यान में पञ्चाशत वर्णो के आरोहावरोह क्रम (अनुलोम विलोम से) शतीमाला, और 'अ क च ट त प य श' के योग से अष्टोत्तर शतीक्षकार रूपी मेरू सहित सम्पूर्ण मन्त्रों की उत्पन्न करने वाली ज्ञान प्रदीप की अंकुर स्वरूपा ब्रह्ममयी अक्षरमाला (अ से लेकर क्षकार पर्यन्त अक्षरों की माला) को नमस्कार किया गया है।

करमाला (अंगुलिपर्वमाला)

अब अंगुलि-पर्व माला अर्थात् करमाला के विषय में लिखते हैं। करमाला में अंगुलियों को केवल दशपोरियों (पर्वो) में ही जप किया जाता है। इन दशपोरियों में दशबार जपने से शतीमाला के जप के बराबर जप होता है। शक्ति करमाला के विषय में यामल में निम्नलिखित वचन है--

अनामायास्त्रयं पर्व कनिष्ठायास्त्रिपर्विका:।
मध्यमाया स्वयं पर्व तर्जिनी मूल पर्वणि।।
प्रदक्षिण्य क्रमेणैव जतेद्दशसु पर्वसु।
शक्तिमाला समाख्याता सर्व मन्त्र प्रदीपिका।।
पर्वद्वयन्तु तर्जन्या मेरूं तद्विद्धि पार्वति।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जंपेतत्र मानव:।।

चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशोवलम्।
नित्यं जपं करे कुर्यात नतु काम्यं कदाचन।।
काम्यं चापि करे कुर्यात् मालाभावे च सुन्दरि।।

अर्थात अनामा की तीन पोरी, कर अंगुलि (कनिष्ठा) की तीन पोरी और मध्यमा की तीन पोरी और तर्जनी के मूल पर्व पर (पोरीपर) दक्षिण की ओर जपने से अर्थात अनामा के अनन्तर कनिष्ठका और उसके उपरान्त मध्यमा के तीन तीन पर्वो पर और अन्त में तर्जनी के मूल पर्व पर जपने से दश संख्या बन जाती है। तर्जनी के दो पोरों को मेरू मानना चाहिये। जो साधक तर्जनी के अग्र भाग मध्य भाग में जप करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल नष्ट हो जाते हैं।

नित्य का जप करमाला से कर सकता है, किन्तु काम्य जप अर्थात् जो जप किसी कामना से किया जाय उसको करमाला से न करे।

किन्तु यदि कहीं ऐसे स्थान पर जन करना पड़ जाय जहाँ कहीं किसी प्रकार की माला सुलभ न हो सके, ऐसे अवसर पर करमाला से भी काम्य जप किया जा सकता है।

रूद्राक्षादि मालायें

जप के लिये रूद्राक्ष माला सबसे उत्तम बतलाई गयी है। अतः यह माला भुक्ति मुक्ति और सब प्रकार की सिद्धि देने वाली बतलाई गई है। सब शक्तियों तथा सब देवताओं के मन्त्रों के जप के लिय रूद्राक्ष काम में लिया जा सकता है। अतएव शक्ति सङ्गम तन्त्रम में 'रूद्राक्षः शक्ति मात्रके' सर्व मन्त्रेच रूद्राक्ष' ऐसे बचन पाये जाते हैं।

माला प्रायः एक सौ आठ दानों की अथवा चौवन दानों की बतलाई जाती है, किन्तु विशेष कामना से इनके अतिरिक्त भी बतलाई गई है यथा-मुक्ति के लिये 25 की, धन प्राप्ति के लिये तीस

और अभिचार के लिये 15 दानों की लिखी है।

एवमेव पुष्टि के लिये 27 तथा सर्व साधारण जप के लिये भी 27 दानों की माला की गई है। किन्तु चौवन तथा एक सौ आठ की यथाक्रम काम्य कर्म में तथा सर्वाभीष्ट दात्री लिखी है। तथा-

चतुः पञ्चाशदशैः सा काम्य कर्मसु सिद्धि दा।
अष्टोत्तरशतैः कृत्वा सर्वाभीष्टप्रदा मता।।

इनके अतिरिक्त शंख, स्फटिक, पद्माक्ष, पुत्रजीव (जियापोत) मूंगा, और मोती आदि भी माला के लिये प्रशस्त बताये गये है। शंख माला लक्ष्मी देने वाली, स्फटिक की माला मुक्तिदात्री, पद्माक्ष माला पुष्टिकारिणी, पुत्रजीव माला पुत्र पशु और धान्य समृद्धि की बढ़ाने वाली, मूंगा की माला पुत्र सौभाग्य और वश्य कारिणी, मोतियों की माला मुक्ति और सर्व सम्पदकरी, कुशमयी (कुशाओं की) माला पाप नाशिनी और स्वर्ण तथा चाँदी की माला मनः कामना की पूर्तिकारी कही गई है। लिखा भी है--

मुक्ति प्रदाः स्फटिकजाः पद्माक्षाः पुष्टि वर्धनाः।
पुत्रजीव भवाः पुत्रपशुधान्यसमृद्धिदाः।।
विद्रुमोत्थास्तु धनदा पुत्रसौभाग्यवश्यदा।
मौक्तिका मुक्तिदाः प्रोक्ताः सर्वसम्पत् समृद्धिदाः।
पापहा वै कुशमयाः कामदाः स्वर्ण रूपजाः।।

विद्याभेद से मालाभेद

काली की उपासना में दन्त माला, तारा की उपासना में नर शंख माला, (अस्थि माला) छिन्नमस्ता के जप में नरस्थि माला, त्रिपुरा की उपासना में लाल चन्दन की माला और भैरवी की उपासना में स्वयम्भू माला उत्तम बताई गई है। मातंगी की उपासना में (मन्त्र जप में) गुञ्जा (रत्ती) की माला धूमावती के मन्त्र जप में खर दन्त माला (खर-गधा) बगलामुखी के जप में हरिद्रा (हल्दी) माला, कमला

(लक्ष्मी) के मन्त्र जपने में कमल माला, सरस्वती, और भुवनेश्वरी के मन्त्र जप में स्फटिक की माला और विद्या के जप में सफेद रत्ती की माला श्रेष्ठ मानी गई है।

विष्णु भगवान के जप के लिये शंख माला, भगवान शरभ शालंव के मन्त्र में भद्राक्ष माला, गणेशजी के मन्त्र में गजदन्त माला (हाथी दाँत की माला) त्रिपुरा के लिये पुत्रजीवा की माला, गोविन्द भगवान की उपासना में तुलसी की माला से, जप करना श्रेष्ठ माना गया है।

रत्नमाला, स्वर्णमाला, रौप्यमाला (चाँदी की माला) तथा ताम्र-मालायें अत्यन्त पवित्र मानी गई है, और प्राय: सब देवताओं के जप के लिये लिखी गई है।

औदुम्बर के बीजों की माला, बट बीज माला, सुपारियों की माला और जातीफल की माला, मधुमती और वीर विद्याओं के जप में श्रेष्ट बतलाई गई हैं। सूर्य भगवान के जप में प्रवाल माला (मूंगो की माला) और सब शक्तियों के (सब देवियों के) जप में उत्तम मानी गई हैं।

वर्णभेद से मालाभेद

ब्राह्मण के लिये कुश ग्रन्थि से जप करना उत्तम है,क्षत्रियों को स्वर्ण माला से, वैश्यों को पुत्रजीव की माला से और शूद्रों के लिये पद्माक्ष की माला से जप करना नितान्त उत्तम बताया गया है।

कार्यभेद से मालाभेद

सर्व कार्य के लिये रूद्राक्ष, पुष्टि के लिये पद्माक्ष, कांति के लिये चन्दन, मुक्ति के लिये (मुक्ति=मोक्ष) मुक्ताफल (मोती) वशीकरण के लिये मूँगा (प्रवाल) मोहन कार्य के लिये गुञ्जाफल (रत्ती) भाग्य सम्पत्ति के लिये भद्राक्ष, राज्य प्राप्ति के लिये रूद्राक्ष, धन धान्य और

पुत्र प्राप्ति के लिये पुत्रजीवक, विद्वेषण के लिये अरिष्ट (रीठा) मारण के लिये बदरीफल (बैर) भय के लिये मरीच (काली मिर्च) और विनाश के लिये पित्रुमर्द (निम्ब=नीम) माला उत्तम मानी गई है।

महाशंख की माला से अभीष्ट सिद्धि अकस्मात् प्राप्त होती है दन्त माला से सृष्टि की अखिल सिद्धियाँ हाथ लगती हैं। हड्डी से बनी हुई (अस्थि माला) सर्व शत्रु नाशिनी कही जाती है। खर दन्त माला से शत्रु नाश होता है। गज दन्त माला से साधक सबका गुरू बन जाता है। स्वयम्भू कुसुम माला से साधक सब विद्याओं का ईश्वर हो जाता है।

सब प्रकार की अस्थियों की माला शत्रुओं को भयभीत करती है और उनका नाश भी कर डालती है। स्फाटिकी माला वाक् सिद्धि देने वाली कही गई है।

भूतों के नाश के लिये औदुम्बर माला, दारिद्र्य नाश के लिये द्राक्ष (पिलखल) माला, यक्षिणी सिद्धि कों लिये वटबीज माला और ऐश्वर्य के लिये कपर्दि (कौड़ी) की माला उत्तम दर्शाई गई है।

संयुक्तमाला

रूद्राक्ष और सोने के दानों की बनी हुई माला हरि हरात्मिका शिव विष्णु रूपा कही जाती है। रूद्राक्ष और चाँदी के दानों से बनी हुई माला ब्रह्म शिवात्मिका (ब्रह्मा और शिव के रूप वाली) कहलाती है।

आम्नाय भेद से मालाभेद

पूर्वाम्नाय के देवताओं के मन्त्र स्फाटिकी माला से, दक्षिणाम्नाय के देवताओं के मन्त्र रूद्राक्ष माला से, पश्चिमाम्नाय देवमन्त्र प्रवाल और मौक्तिक माला से, उत्तराम्नाय महाशंख माला से और ऊर्द्धाम्नाय के देवताओं के मन्त्र भी महा शंख माला से जपे जाते हैं, किन्तु दिन में रूद्राक्ष माला से शक्ति मन्त्र का जप करना सर्वथा निषिद्ध है, अत: साधक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये, लिखा

हुआ भी है--

रूद्राक्षै: शक्तिमन्त्रस्तु दिवा यो जपति प्रिये।
स दुर्गतिमवाप्नोति जपस्तस्य निरर्थक:।।

अर्थात दिन में रूद्राक्ष माला से शक्ति मन्त्र का जप करने वाला साधक दुर्गति को प्राप्त होता है और उसका जप भी निरर्थक हो जाता है।

निषिद्धमाला

उत्तराम्नाय के देवता के मन्त्र को पुत्रजीव की माला से कदापि न जपना चाहिये और तारा तथा कालिका के मन्त्रों को शंख की माला से कभी भी न जपे अन्यथा भलाई के बदले बुराई होती है और मन्त्र सिद्धि नहीं होती है। लिखा हुआ भी है--

मणिभि: पुत्र जीवोत्थैर्नजपेदुत्तरेश्वरीम्।
शंखमालां विधायाथ यस्तारां कालिका जपेत्।
मन्त्रक्षोभमवाप्नोति विद्या सिद्धिर्न वै भवेत्।

माला-संस्कार-विधि

यद्यपि माला संस्कार दश विद्याओं के भेद से मन्त्र शास्त्र में अनेक प्रकार से दर्शाया गया है तथापि सामान्य विधि यहाँ पर पुरश्चरण कर्त्ताओं के लिए लिखी जाती है-

सबसे पहिले अश्वत्थ (पीपल) के नौपत्रों से अष्ट दल कमल बनावे और उसके मध्य में माला की स्थापना करे। माला की स्थापना के समय मातृका मूल का उच्चारण करना चाहिये। फिर सद्योजात मन्त्र द्वारा पञ्चगव्य से उसका प्रक्षालन करे। तदन्तर वामदेव मन्त्र से चन्दनागरू आदि गन्धों से उसका घर्षण करना चाहिए तब अघोर मन्त्र से उसको धूप से धूपित कर तत्पुरूष मन्त्र से चन्दन द्वारा अभिमन्त्रण करे अर्थात् माला के प्रत्येक मनके का सौ सौ बार अथवा यथावकाश एक एक बार अभिमन्त्रित करे। फिर माला में अपने

विभवानुसार अपने इष्ट देवता का आवाहन पूजन करे। माला की प्राण प्रतिष्ठा करनी उचित है। इसके बाद मूलमन्त्र से देवता और माला की पुनः पूजा करे जैसे कि सनत्कुमार संहिता में लिखा है--

संस्कृत्यैवं तु विधिवत् तत्प्राणं तत्र योजयेत्।
मूल मन्त्रेण तां माला पूजयेद्द्विजसत्तम।।

पूजा के अनन्तर माला में देवत्व सिद्धि के लिए होम करना लिखा है। यदि होम न कर सके तो अष्टोत्तर शत का द्विगुण जप करना अत्यन्त आवश्यक है। इस माला से इष्ट मन्त्र के अतिरिक्त अन्य देवता के मन्त्र का जप करना निषिद्ध है। "अक्ष मालांच मुद्राञ्च गुरोरपि न दर्शयते" के अनुसार जप माला गुरू को भी न दिखानी चाहिए, दूसरों की गणना ही कहां क्या हो सकती है।

अतएव माला सर्वदा गोमुखी के भीतर रखी जाती है और जप के समय भी हाथ गोमुखी के भीतर रखकर जप किया जाता है।

संक्षिप्त माला-संस्कार

पञ्चगव्य और पंचामृत से माला का प्रक्षालन और स्नान कराकर मूलमन्त्र से गन्धाक्षत पुष्प, धूप, दीप नैवेद्यादि से पूजा कर प्राण प्रतिष्ठा कर और तदन्तर एक सौ आठ बार मूलमन्त्र का जप करना चाहिए।

इस प्रकार संस्कृत माला जप कर्म में प्रशस्त मानी गई है।

माला प्रार्थना

ॐ मांमाले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
न्यस्तस्त्वयि चतुर्वर्गस्तस्मान्मे वरदा भव।।
अविघ्नं कुरू मालेत्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकालेच सिद्ध्यर्थ प्रसीद त्वं ममोपरि।।

जप के समय में उपयुक्त मन्त्रों से माला की प्रार्थना करनी

चाहिये और 'ऐं ह्रीं अक्षमालायै नमः" इस मन्त्र से उसकी पूजा करके जप करना चाहिये।

माला-विसर्जन

त्वंमाले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शिवं कुरूष्वमे भद्रे यशो वीर्यञ्च सर्वदा।।

उक्त मन्त्र से माला को गुप्त स्थान में रखकर प्राणायाम और न्यास करके विसर्जन करना लिखा है।

माला-संस्कार के मन्त्र

माला संस्कार में दिये गये मन्त्र नीचे लिखे जाते है।

(1) ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे भवे नाति भवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः। (सद्योजात मन्त्र)

(2) ॐ वामदेवाय नमोज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमःकलविकरणाय नमः वलविकरणाय नमः वलप्रमथनाय नमः सर्वभूत दमनाय नमः मनोन्मनाय नमः (वामदेव मन्त्र)

(3) ॐ अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रूद्ररूपेभ्यः। (अघोर मन्त्र)

(4) तत्पुरूषाय विद्महे महादेवाय धीमहि, तन्नरूद्रः प्रचोदयात्।
(तत्पुरूष मन्त्र)

(5) ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम। ब्रह्माधिपति ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्म शिवोमें अस्तु सदाशिवोम्। (पञचम मन्त्र)

असंस्कृत और अप्रतिष्ठित माला के जप के दोष

अप्रतिष्ठित माला से जो साधक जप करता है उसका सब जप विफल होता है और उस पर देवता क्रुद्ध होते है।

माला के सूत्र

पवित्र स्त्री द्वारा बनाये गये कपास का सूत्र या रेशमी सूत्र कमलोद्भव सूत्र, कोषे का सूत्र, इनमें से किसी एक के सूत्र से माला गूंथनी चाहिए।

सुवर्ण, चाँदी और ताम्र के त्रिगुणित सूत्र में माला गूँथने से शांति वशीकरण और अभिचार कर्म सिद्ध होते है। रक्ततार में गूँथने से और उसमें जप करने से मुक्ति, श्वेततार से योग साधन, पीत तार से कामना पूर्ति एवं यश की प्राप्ति होती है। कृष्ण से रोग उत्पन्न होता है। नित्य और नैमित्तक कार्य में शुक्ल और रक्त दोनों श्रेष्ठ है।

माला गूंथने की विधि

माला ग्रथित करने की विधि यह है कि बीजों तथा सूत्र को पञ्च गव्य में डाल दें, पुनः मूल मन्त्र पढ़कर शुद्धोदक से (शुद्ध जल से) धोकर तब गूंथें।

गुरू, श्वसुर, दामाद (जमाता) पुत्र इनकी गूंथी हुई माला अथवा स्वयं की बनी हुई माला को साधक ग्रहण करे। अपनी स्त्री की गूंथी हुई माला शीघ्र ही सिद्धि दायिनी होती है। इनसे अन्य की बनाई हुई माला निषिद्ध है। एक एक मणि को लेकर एक एक ग्रन्थि लगानी चाहिए।

माला का आकार

माला गोपुच्छ सदृशी सर्प के आकार की हो। माला के अन्त में एक सुमेरू के दक्षिण में गुरू व्यास मन्त्रों का ध्यान करे तथा बाई और देवता का ध्यान करते हुए माला की पूजा करे। ऐसा करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

माला प्रकट करने से भूत, राक्षस, वेताल, सिद्ध, गन्धर्व और वारण इसकी शक्ति को हरण कर लेते है। इसलिए यत्न पूर्वक माला

गुप्त रखनी चाहिए। जप के अलावा अन्याश्रय में माला की पूजा करके उसे छिपा लेना चाहिए।

जप माला का जपकाल में हाथ से गिरने का प्रायश्चित

जपकाल में माला हाथ में गिरजाय तो तीन दिन तक उससे जप न करे, उसका प्रायश्चित करना चाहिए। प्रायश्चित यह है कि एक हजार बार मूल मन्त्र का जप करे। अथवा एक सौ आठ बार ही जप करे।

जप नियम

कुलार्णव तन्त्र में लिखा है कि जप प्रतिदिन समान संख्या में करे। न्यूनाऽधिक जप न करे। कभी कम कभी अधिक जप करना निष्फल होता है। पुरश्चरण काल में त्रिकाल स्नान करे, यदि त्रिकाल स्नान न कर सके तो प्रातःकाल अवश्यमेव करना चाहिए। पुरश्चरण के प्रत्येक दिन तीनों सन्ध्याओं में तीन बार, दो बार अथवा एक बार उपचार द्वारा अपने इष्टदेव की पूजा अवश्यमेव की जानी चाहिये। बिना पूजा के मन्त्र जप करना उचित नहीं है यतः लिखा हुआ है कि--

न मन्त्रं केवल जपेत् इति।

पुरश्चरण के नियम

जप-काल में संयोगवश यदि भुख लगे, या जंभाई आवे या हुचकी आवे तो आचमन करके षडङ्ग न्यास, अथवा सूर्य दर्शन कर जप करता रहे। योगिनी हृदय में लिखा है कि यदि जपकाल में पतित अथवा अन्त्यज का दर्शन हो अथवा उससे बातचीत हो या अधोवायु निकले या जुम्भा आवे तो आचमन पूर्वक प्राणायाम, षडङ्गन्यास अथवा सूर्य, ब्राह्मण या देव-दर्शन कर जप करना प्रारम्भ कर दे। नित्योत्सव में लिखा है कि--

जप के समय यदि बहिर्भूमि लघुशङ्का के लिये (टट्टी पेशाब के लिये) जाना हो तो पवित्र स्थान पर निवृत्त होकर स्नानान्तर जप में बैठ जावे। यदि स्नान के लिये असमर्थ हो तो मन्त्र स्नान अथवा भस्म स्नान कर वस्त्र बदल लेना आवश्यक है।

भोजन के नियम

हेमन्त ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्न, मूंग, तिल, जौ,मटर, काकुन बथुवा, सेंधा और समुद्र, नमक, गाय का दूध, दही और घी, हरड़, पीपल जीरा, सोंठ, इमली, केला, नारियल, नारङ्गी, आँवला, आम, गुड़ को छोड़कर ईख के रस की बनी हुई वस्तु शक्कर-मिश्री आदि गव्य घृत में पकी वस्तुयें, सब चीजें हविष्य पदार्थ है। पुरश्चरण करने वाले को इन्हीं वस्तुओं में से यथारूचि संग्रह करके अपने उपयोग में लाना चाहिये।

निषिद्ध वस्तु

क्षार,नमक, मांस, गाजर, कांसे के वर्तन में भोजन करना, उड़द अरहर, मसूर, कोदों (मंडुवा) चना, वासी वस्तु, घृत रहित और कीट युक्त भोजन ये सब निषिद्ध है।

अन्न और जल का अभिमन्त्रण

व्यञ्जनों के सहित अन्न को अपने इष्टदेवता के सामने रखकर मूल मन्त्र से उसका प्रोक्षण करे, पुनः सात-सात बार प्रत्येक पदार्थ को अभिषिञ्चित कर भोजन करना चाहिये और जल को बत्तीस बार मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित कर पीना उत्तम है।

पुरश्चरण में आवश्यक कर्तव्य

पुरश्चरण करते समय साधक को निम्नलिखित आठ बातों का ध्यान अवश्यमेव रखना चाहिये--

1 भूशय्या- साधक को पवित्र वस्त्र पहनकर कुश या कम्बल आदि की शय्या पर शयन करना चाहिये, प्रतिदिन पहिनने के वस्त्र सहित शय्या को परिशुद्ध करन लेना आवश्यक है।

2 ब्रह्मचर्य- अष्ट विध मैथुन तथा कामभाव के उद्दीपक कारणों से सर्वथा दूर रहना।

3 मौनावलम्बन- यथा शक्ति मौनधारण करना "मौनेन कलहोनास्ति" के अनुसार सब झगड़ों से रहित होगा।

4 आचार्य वा गुरू सेवा- अतएव श्री गुरू के सान्निध्य में पुरश्चरण करना लिखा गया है।

5 नित्य यथा विधि-स्नान से शारीरिक शुद्धि रखना- पंच गव्य या आंवलों के रस द्वारा मन्त्र जप पूर्वक स्नान करना शास्त्र विहित है।

6 पूजा- स्वेष्ट देवता की पूजा में किसी प्रकार का व्यतिक्रम न होना चाहिये।

7 दान अथवा त्यागेच्छा- दान अथवा त्यागेच्छा, यथा शक्ति यथा विभव सत्पात्र को कुछ न कुछ इष्टदेवता के नाम पर प्रदान करे।

8 गुरू और देवता की स्तुति वन्दना- अवकाश के समय गुरू देवता सम्बंधी स्तोत्र पाठ सहस्र नाम आदि तथा देवी चरितों का पाठ करना। इसमें समय का सदुपयोग होगा और व्यर्थ न जायगा।

साधक को भगवान शङ्कर की निम्नलिखित उक्ति का बराबर ध्यान रखना चाहिये-

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनोदग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने।।

पुरश्चरण समय में क्षौर कर्म, तैल मर्दन और अनिवेदित भोजन न करे। गरम जल से स्नान गीत और वाद्यों का सेवन, कञ्चुक (कुर्ता) उष्णीश (पगड़ी) का धारण करना अन्धकार में सोना, झूठ बोलना, बहुत वार्तालाप करना निषिद्ध है।

पुरश्चरण में शुभाऽशुभ स्वप्न

परमानन्द तन्त्र में लिखा है कि हे शंकरि। आचार्य का (गुरूदेव का दर्शन, चित्त की प्रसन्नता, अल्प भोजन, स्वल्प निद्रा और मन में उलास होना यह मन्त्र सिद्धि के लक्षण है।

स्वप्न में अपने इष्ट देवता का दर्शन, स्फटिक के समान शुभ्र वर्ण मन्दिर अथवा' राज भवन का देखना, श्रीगुरू दर्शन, पूर्ण चन्द्रमा, सूर्य और समुद्र, जल से परिपूर्ण नदी, खिले हुए कमलों से परिपूर्ण तालाब, यन्त्र राज (श्रीयन्त्र) अथवा अपने इष्टदेव का मन्त्र, शिवलिङ्ग और स्वर्ण पर्वत, नौका में बैठकर नदी को पार करना, स्वप्न में अपनी जीत देखना जलती हुई आग, हंस चक्रवाक (चकवा) सारस और मोर देखना, घोड़ों से युक्त रथ, श्वेत छत्र तथा आभूषण, दीपकों की कतार, श्वेत पुष्प, दिव्य स्त्रियों का समूह, फूला हुआ वृक्ष, सुन्दर माँस, आकाश में चलना अथवा उड़ना, सफेद घोड़ा और बैल, उन्नत हाथी, इनका दर्शन अथवा इन पर सवारी करना, किसी सवारी में चढ़कर जाना, मद्यपान करना, माँस भोजन, शरीर में विष्ठा का लेपन, रक्त का (खून का)और दही का लेप तथा इन तीनों का भक्षण, राज्याभिषेक, रत्न और भूषणों का धारण करना, प्रसन्नता द्योतक स्त्रियों का देखना शुभ और कार्य सिद्धि के सूचक हैं।

उक्त प्रकार के स्वप्नों को देखकर प्रात:काल स्नान, सन्ध्या पूजा कर श्री गुरूदेव के अथवा गुरू तुल्य श्रेष्ठ पुरूष के यद्वा देवता के सामने रात में देखे हुए स्वप्न को निवेदन करना चाहिए तथा शुभ

स्वप्न देखने के बाद फिर सोना नहीं चाहिये।

बुरे स्वप्न

स्वप्न में काक (कौवा) कङ्क पक्षी उलूक, गीध, गधा, बिल्ली, भैसा, चाण्डाल, काला पुरूष, काली बिकट स्त्री, शून्य गढ़ा, सूखा वृक्ष, सूखी नदी, पोखर और सूखी बाबड़ी (कोई भी सूखा जलाशय) तैल मालिश करना, काँटेदार वृक्ष, मन्दिर और राजभवन का टूटना, अपने को पागल नग्न (नङ्गा) भयभीत और किसी संकट में पड़ा हुआ (विपद् मग्न) देखकर अशुभ स्वप्नों की शान्ति करनी चाहिये।

अशुभ स्वप्न-शान्ति

अशुभ स्वप्न देखने पर पहले-

उग्र वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम।
नृसिंह भीषणं भद्र मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।।

उक्त मन्त्रराज का जप करे तदनन्तर--

नृसिंहाय नमो दोषान् जहि दुःस्वप्नजान् मम।
यतः स्वप्नाधिपस्त्ववै सर्वेषां फलदो मतः।।

उक्त प्रकार से प्रार्थना करके 'क्षरौ' इस नृसिंह बीज का जप करे शुभाशुभ स्वप्न का फल क्रम से प्रथम, द्वितीय,तृतीय और चतुर्थ याम में देखने से 1 वर्ष में, 6 मास में तीन मास में और एक मास में यथा क्रम होता है।

मन्त्र सिद्धि के चिन्ह

चित्त प्रसादो मनसश्च तुष्टिरल्पाशिता स्वप्न पराड्. मुखत्वम्।
स्वप्नेषु यानाद्युपलम्भनञ्च सिद्धेस्तु चिन्हानि भवन्ति सद्यः।।

वक्रतुण्ड कल्प में लिखा है कि मन्त्र सिद्धि के होने पर शीघ्र ही चित्त की प्रसन्नता, मन में सन्तोष, अल्प भोजन, नींद कम आना, स्वप्न

में सवारी पर बैठना अथवा सवारी को देखना इत्यादि चिन्ह होते हैं पुनः भैरवी तन्त्र में लिखा है--

ज्योति, पश्यति सर्वत्र शरीरं वा प्रकाशयुक्।
निजं शरीरमथवा देवतामयमेव हि।।

अर्थात मन्त्र सिद्धि होने पर साधक सर्वत्र ही प्रकाश देखता है अथवा अपने शरीर को प्रकाशमय देखता है। अथवा अपने शरीर को देवतामय ही देखता रहता है।

नारद पाञ्च रात्र लिखता है कि मन्त्राराघन में लगे हुए साधक को तीन वर्ष पर्यन्त पहले पहले बहुत प्रकार के विघ्न तथा बाधायें उपस्थित होती हैं और ऐसी स्थिति में यदि वह साधक मन से, कर्म से किसी प्रकार भी उद्वेग को प्राप्त न होकर अपने कार्य में संलग्न रहता है तो तीसरे वर्ष के उपरान्त बड़े-बड़े घमण्डी राजा, जमींदार, मानी पुरूष सब उसके आगे उसकी प्रसन्नता के लिये प्रार्थना करते है और कभी भी निष्ठुर वचन कहने को समर्थ नहीं होते है। साधना करते करते नवें वर्ष के उपरान्त मन्त्र स्वयं सिद्ध हो जाता है। साधक मन्त्र सिद्धि के माहात्म्य से अपने हृदय में आनन्दप्रद नाना प्रकार के आश्चर्यो का अनुभव करता है। केवल हृदय में हीं नहीं, बाहर भी अनेक प्रकार के आश्चर्यो को देखता है।

कभी थोड़ी देर के लिये जड़ बुद्धि बनता है, तो कभी अत्यन्त हर्षित होता है। कभी आकाश में नगाड़ों की ध्वनि सुनता है और कभी गीत और वाद्यों से युक्त मधुर सङ्गीत सुनता रहता है और कभी कपूर और कस्तूरी की सुगन्ध सूंघता रहता है। कभी अपने को आकाश में उड़ता हुआ अनुभव करता है। कभी आकाश को क्षण भर के लिये सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से एक साथ व्याप्त देखता है! कभी गगन मण्डल में स्थित विचित्र ताराओं को और योगियों को देखता है। क्षण भर में आकाश को मेघाच्छन्न और कभी दिन में

ही रात को और रात में दिन को देखता है।

मन्त्र सिद्धि के प्रभाव के बल से परिपूर्ण (शक्तिमान) सूर्य के समान तेजस्वी, पूर्ण चन्द्र के समान कान्तिमान गरूड़ के समान गतिशील चाहें थोड़ा भोजन मिले अथवा बहुत कभी खेद को प्राप्त नहीं होता, मल और मूत्र में कमी हो जाती है, निद्रा के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है। जप और ध्यान में बैठने से जरा भी कष्ट नहीं होता, बिना भोजन और जलपान के वह एक पक्ष अथवा एक मास तक रह जाता है। उक्त प्रकार के महा आश्चर्यकारी चिन्हों से साधक समझ जाता है कि मेरा मन्त्र देवता सब प्रकार से प्रसन्न हो गया है। जैसे कि लिखा भी है--

मन्त्राराधनसक्तस्य प्रथमे वासरे भयम्।
जायन्ते वहवो विघ्ना नियतस्थस्य नारद ।।
नोद्वेगं साधको याति कर्मणा मनसा यदि।
तृतीयवासरादूर्ध्व राजानश्च महीमृतः।।
प्रार्थयन्तेऽनुरोधेन गर्वितो अपि मानिनः।
नवमाद्वासरादूर्ध्व स्वयं सिध्यति मन्त्रराट्।।
इत्येवमादिभिश्चिन्है: महा विस्मयकारिभिः।
प्रवृत्तै: सम्प्रवोद्धव्यं प्रसन्नो मन्त्रराडिति।।

(नारद पाञ्चरात्रे)

देवताओं के मन्त्रों की जप संख्या

गणपति	चार लाख
हेरम्ब	तीन लाख
हरिद्रा गणेश	चार लाख
उच्छिष्ट गणपति	चार लाख
त्रैलोक्य मोहन गणपति	चार लाख
कालिका	एक लक्ष

कालिका द्वविंशाक्षरी मन्त्र	एक लक्ष
उच्छिष्ट चाण्डलिनी सुमुखी देवी	इक्कीस हजार
तारा	एक लाख
	चार लाख। यदि मनुष्यास्थि माला से जप करता हो तो तब एक लाख जप पर्याप्त होता है।
षोडशी	एक लाख
श्री विद्या	एक लाख
हादि पञ्चदशी	एक लाख
कादि पञ्चदशी	एक तीन अथवा नौ लाख
सादि पञ्चदशी	एक लाख
बाला त्रिपुर सुन्दरी	तीन लाख
त्रिपुर भैरवी	दस लाख
संपद् प्रदा भैरवी	एक लाख
षट् कूटा भैरवी	एक लाख
रूद्र भैरवी	एक लाख
भुवनेश्वरी भैरवी	एक लाख
अन्नपूर्णेश्वरि भैरवी	एक लाख
प्रत्यङ्गिरा	दश हजार
भुवनेश्वरी	दश हजार
त्रिपुरा	बारह लाख
त्वरिता	एक लाख
नित्या	चार लाख
दुर्गा	आठ लाख
महिष मर्दिनी	आठ लाख
जय दुर्गा	पाँच लाख
शालिनी दुर्गा	पन्द्रह लाख

वाग्देवता	आठ लाख
भगिधि देवता	ग्यारह लाख
पारिजात सरस्वती	बारह लाख
लक्ष्मी	बारह लाख
कमला	दश लाख
महालक्ष्मी	बारह लाख
बगलामुखी	एक लाख
घनदा मन्त्र	एक लाख
कर्ण पिशाचिनी	एक लाख
विशालाक्षी मन्त्र	वर्ण लक्ष
गौरी मन्त्र	एक लाख
ब्रह्माणी मन्त्र	दस हजार
मधुमती	एक लाख
शिव	द्वादश लक्ष
विष्णु	षोडश (सोलह) लाख
श्री कृष्ण	दश लाख तथा पाँच लाख
अष्टादशाक्षर मन्त्र	बारह, दश तथा चार लाख
गोपाल मन्त्र	एक लाख
वासुदेव मन्त्र	बारह और चार लाख
दधिवामन दशाक्षर मन्त्र	तीन लाख
हयग्रीव मन्त्र	33 तेतीस लाख
हयग्रीव एकाक्षर मन्त्र	चार लाख
नृसिंह मन्त्र	बाईस, आठ और छै लाख
राम मन्त्र	षड् लक्ष 6 लाख
वराहावतार मन्त्र	एक लाख
हरिहरात्मक मन्त्र	एक लाख
हनुमान का मन्त्र	एक लाख

दशाक्षर मन्त्र	षड् सहस्र छः हजार
सूर्य मन्त्र	22,8,3 बाइस आठ और तीन लाख
शिव मन्त्र अष्टाक्षर	आठ लाख, अष्ट लक्ष
मृत्युञ्जय मन्त्र	तीन लाख
दक्षिण मूर्ति	एक लाख
अर्धाम्बिकेश	एक लाख
नीलकण्ठ	तीन लाख
भैरव मन्त्र, आपदुद्धार बटुक भैरव	अक्षर संख्यक लक्ष जप मन्त्र के जितने अक्षर हो उतने लाख

नवग्रह मन्त्र जप

सूर्य	सात हजार
चन्द्र	ग्यारह हजार
मङ्गल	दस हजार
बुध	चार हजार
बृहस्पति	उन्नीस हजार
शुक्र	16 सोलह हजार
शनि	तेईस हजार
राहु	अठ्ठारह हजार
केतु	सत्रह हजार

जिन मन्त्रों के जप में संख्या का निश्चय नहीं किया गया है उन मन्त्रों के जप की संख्या का नियम आठ हजार है। एवमेव होम की संख्या न बताई जाने पर होम की संख्या भी आठ हजार कही गयी है। यह संख्या जो पुरश्चरण के लिये यहां पर दी गई, यह केवल सत्य युग की संख्या है, त्रेता युग में इस संख्या का दूना, द्वापर में तिगुना कलियुग में चौगुना जप करना लिखा है। अतएव 'कलौचतुर्गुणी संख्या' ऐसा लिखा हुआ है।

सम्भव है पुरश्चरण में किसी को थोड़े ही परिश्रम में सफलता प्राप्त हो जावे किन्तु शास्त्र का कथन है कि जब तक मन्त्र सिद्धि नहीं होती तब तक साधक पुरश्चरण करता रहे और अन्त में उसे अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होती है।

मन्त्र संस्कार

दीक्षित होने के उपरान्त पुरश्चरण करने से पूर्व साधक को चाहिये कि यदि गुरूदेव ने दीक्षा काल में मन्त्र संस्कार न किया हो तो स्वयं पहले मन्त्र संस्कार कर ले तब पुरश्चरण करे। गौतमीय तन्त्र में मन्त्र के निम्न लिखित दश संस्कार लिखे है 1-जनन 2-जीवत 3-ताड़न 4-बोधन 5-अभिषेक 6-विमलीकरण 7-आप्यायन 8-तर्पण 9-दीपन 10-गुप्ति।

जनन संस्कार के लिये पहले गोरोचन, कुंकुम अथवा चन्दन या भस्म से स्वर्णादि पात्र में या भोज पत्र पर मातृका यन्त्र बनाना चाहिये। शक्ति मन्त्र के संस्कार में कुंकुम से, विष्णु मंत्र में चंदन से और शिव मंत्र में भस्म से मंत्र लिखना उचित है। उक्त मातृका मन्त्र देवता का आवाहन पूजन कर उससे (मंत्र से) क्रमशः मंत्र के एक एक वर्ण का उद्धार पृथक पृथक पत्र पर लिखे, यह मंत्र का जनन संस्कार कहा गया है।

उद्धृत सभी मन्त्रों वर्णो को पंक्ति क्रम से प्रणव (ॐ) द्वारा पुटित कर एक एक वर्ण का सौ बार जप करने से जीवन संस्कार होता है, विश्वसार तन्त्र के आधार पर प्रत्येक वर्ण का सौ बार अथवा दश बार जप करने से जीवन संस्कार हो जाता है। मन्त्र के सभी वर्णो को अलग अलग लिखकर 'यं' मन्त्र का उच्चारण करते हुए चन्दन जल से प्रत्येक को सौ बार अथवा दशबार ताड़ित करने से ताड़न संस्कार होता है।

मन्त्र की वर्ण संख्या के अनुसार करवीर (कनेर) पुष्पों से 'र' मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसको हनन करना बोधन संस्कार होता

है।

भोजपत्र अथवा सुवर्ण रजतादि पात्र पर मन्त्र लिखकर वर्ण संख्यक (मन्त्र वर्ण संख्यक) रक्त करवीर (लाल कनेर) पुष्पों से 'र' मन्त्र द्वारा सब वर्णो को अभिमन्त्रित कर अश्वत्थ पत्र से तत्तन्त्रोक्त विधान से सभी मन्त्र वर्णो का सिञ्चन करना अभिषेक संस्कार कहलाता है।

मतान्तर से मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर 'रौ हँ स: ओं' मंत्र से उसे अभिमन्त्रित करे और पुन: एक हजार बार मंत्र द्वारा अभिमंत्रित जल से अश्वत्थ पत्रादि द्वारा मंत्र का अभिषेक संस्कार करे।

सुषुम्णा के मूल और मध्य भाग में मंत्र का चिंतन कर ज्योतिर्मन्त्र ॐ ह्रौ से मलत्रय को दग्ध करना विमलीकरण है।

मतान्तर से 'ॐ त्रों वषट्' इन बीजों से मंत्र को सम्पुटित कर एक हजार बार जप करने से विमलीकरण संस्कार होता है।

मन्त्र के सभी वर्णो को कुशोदक अथवा पुष्पोदक द्वारा ज्योति मन्त्र से आप्यायित करने का नाम आप्यायन है। अर्थात् 'ॐ ह्रौ' इस मन्त्र से कुशोदक अथवा पुष्पोदक से मन्त्र वर्णो को आप्यायित करने का नाम आप्यायन है।

पूर्वोक्त ज्योतिर्मन्त्र द्वारा मन्त्र की वर्ण संख्या के अनुसार जल से अथवा दुग्ध से या घृत से तर्पण करना मन्त्र तर्पण कहलाता है। शक्ति मन्त्र में मधु से, विष्णु मंत्र में कर्पूर मिश्रित जल से और शिव मन्त्र घी, दूध से तर्पण किया जाता है ॐ ह्रीं श्रीं इन मंत्रों द्वारा मंत्र को पुटित कर 108 एक सौ आठ बार जप करने से मन्त्र दीपन संस्कार होता है।

मन्त्र को अप्रकट रखने से मन्त्र का गुप्ति संस्कार होता है। मतान्तर से मन्त्र को 'हुं बीज से सम्पुटित कर उसका एक सौ आठ

बार अथवा एक हजार बार जप करना मन्त्र का गोपन (गुप्ति) संस्कार होता है।

मन्त्र चैतन्य

मन्त्र को चैतन्य करने के लिये मन्त्र के पहले "श्रीं श्रीं ह्री" तथा अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त मातृकाक्षरों का उच्चारण कर मंत्र का उच्चारण करे और पुनः पूर्वोक्त तीनों बीज तथा अ से क्ष पर्यन्त मातृका का उच्चारण करे। इस प्रकार 108 एक सौ आठ बार जप करने से मन्त्र चैतन्य हो जाता है। इस मन्त्र चैतन्य से मन्त्र जप का फल कोटि गुणा बढ़ जाता है।

पुरश्चरण में मन्त्र चैतन्य अत्यावश्यक है अतएव लिखा है--

मन्त्रश्चैतन्य सहिता सर्व सिद्धिकराः स्मृताः।
मन्त्राश्चैतन्य रहिताः प्रोक्तावर्णास्तु केवलम्।।

मन्त्र चैतन्य के लिये मंत्र को मातृकाक्षरों से सम्पुटित कर जपना नितांत आवश्यक है अतएव कुलार्णव में लिखा है--

मन्त्रीतु प्रजपेन्मन्त्रं मातृकाक्षर सम्पुटम्।
एवं क्रमेण जप्त्वातु मासात् सिद्धे भवेत्मनुः।
मातृका जपमात्रेण मन्त्राणां कोटि कोटयः।
सिद्धास्तेनैव सन्देही यस्मात् सर्व तदुद्यवम्।।

कुल्लुकादि मन्त्रों का जप

अपने इष्ट मन्त्र को जपने से पूर्व मन्त्र के कुल्लुकादि मन्त्रों का जप नितान्त आवश्यक है। इन मन्त्रों के जप के बिना इष्ट मन्त्र का जप करना सिद्धि नाशक ही नहीं अपितु हानिप्रद भी है। जैसा कि लिखा भी है--

अज्ञात्वा कुल्लुकामेतां जपते योऽधमः प्रिये।
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिश्च जायते।

प्रथम कुल्लुका का, तब सेतुका, पुनः महा सेतुका और इसके बाद निर्वाण का जप ततः इष्ट मन्त्र का जप किया जाता है। कुल्लुका जप शिर में बारह बार करना चाहिये।

कुल्लुका

काली के मन्त्र की कुल्लुका-क्री हूं स्त्री फट्। छिन्नमस्ता-श्री ह्री ह्री से ह्री ह्री स्वाहा। वज्र वैरोचिनीट्रवज्र वैरोचिन्यै हुं फट्।

त्रिपुर सुन्दरी-ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा।

भैरवी- ह ष रैं।

शेष देवियों की कुल्लुका ॐ हूं क्रौ है जैसे कि लिखा हुआ है-

अन्येषान्तु महेशानि त्र्यक्षरी कुल्लुका मता।

तारं कूर्च महेशानि पश्चता्अंकुशमुद्धरेत्।।

अर्थात तारं =ॐ कूर्च = हूं अंकुश = क्रौ।

मतान्तर से-

ताराकी- ह्रीं स्त्रीं हुं।

मञ्जुघोष- ॐ अ र व च ल धीं,

भुवनेश्वरी- ह्रीं

मातङ्गी- ॐ

धूमावती- ह्रीं, षोडशी स्त्रीं लक्ष्मी-श्रीं

सरस्वती- ऐं अन्नपूर्णा- श्रीं,

मन्त्र सेतु

सेतु का जप हृदय में बारह बार किया जाता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय साधक के लिये सेतु ओंकार है। वैश्य के लिये 'फट' और और शूद्र के लिये 'ह्रीं मन्त्र सेतु है।' मतान्तर से शूद्र जाति वालों को सेतु 'ओं' और अन्य मत में ॐ भी शूद्रों के लिये सेतु माना गया है। मतान्तर से सब द्विजातियों का सेतु प्रणव ॐ है अतः वैश्यों का सेतु प्रणव भी है और फट् भी है।

महा सेतु

महा सेतु का जप द्वादशवार कण्ठ स्थान में।

त्रिपुर सुन्दरी का महासेतु 'ह्रीं' कालिका का 'क्रीं' तारा का 'हूं' महासेतु है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी देवताओं का महासेतु 'स्त्रीं' है। जैसे कि लिखा हुआ है।

"अन्येषान्तु बधूबीजम्"। इति।

निर्वाण

निर्वाण का जप नाभि स्थान मणिपूरक चक्र में बारह बार किया जाता है- यथाः-

ॐ अं- मूलमन्त्र ऐं आं इं ई हं क्षं ॐ अर्थात् ॐ अं तब मूलमन्त्र इसके अनन्तर, ऐं ई ..... हं क्षं ॐ जोड़कर निर्वाण मन्त्र बनता है।

मुख शोधन मन्त्र

उच्छिष्ट भोजन असत्य भाषण और कलह आदि करने से जिव्हा दूषित हो जाती है। जिव्हा के शोधन के लिये मुख शोधन तन्त्र शास्त्र में बताया गया है। जप करने से पूर्व अपने मंत्र के अनुसार मुख शोधन मंत्र का जप कर लेना चाहये।

त्रिपुर सुन्दरी- श्री ॐ श्री ॐ श्री ॐ।

श्यामा- क्री क्री ॐ ॐ ॐ क्री क्री क्री ।

तारा- ऐं ऐं ऐं।

बगलामुखी- ऐं ह्री ऐं।

मातङ्गी- ॐ। लक्ष्मी का श्री, धूमावती का ॐ, धनदा का ॐ धूं ॐ मुख शोधन मन्त्र है। अन्य देवताओं का मुख शोधन ॐकार ही है।

कुल्लुकादि मन्त्र तथा मुख शोधन मन्त्रों के विषय में विशेष जानकारी के लिये शाक्तानन्द तरंगिणी को देखना चाहिये।

मन्त्र का अशौच

मन्त्रोच्चारण से पहले मन्त्र का जातकाऽशौच और मन्त्रोच्चारण के अनन्तर मृताशौच होता है। इन दोनों अशौचों से युक्त मन्त्र सिद्ध नहीं होता है। मन्त्र के आदि और अन्त में ब्रह्मबीज (ॐ) लगाकर सात बार जपने से उक्त दोनों प्रकार के अशौच दूर हो जाते हैं। अर्थात जप से पहले जप के अन्त में ब्रह्म बीज पुटित मन्त्र का जप करना चाहिये लिखा भी है:-

सूतक द्वय मुक्तो यः स मन्त्रः सर्व सिद्धिदः।
ब्रह्म बीजं मनोर्दत्वा चात्यन्ये परमेश्वरि।
सप्त बारं जपेन्मन्त्रं सूतकद्वयमुक्तये।।
जातसतकतादौ स्यात् अन्तेचमृतसूतकम्।
सूतक द्वय सशक्तौ न मन्त्रः सिद्धि दायकः।। रूद्रयामले।
मन्त्रार्थ मन्त्र चैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शत कोटि जपेनाति तस्य सिद्धिर्न जायते।।
मन्त्र मुक्तावली।

अर्थात जो साधक मन्त्रार्थ, मन्त्र चैतन्य और योनि मुद्रा को नहीं जानता है उसको मन्त्र का सौ करोड़ जप करने पर भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

मन्त्र देवतयोरभेदज्ञानं मन्त्रार्थः। अर्थात् मन्त्र और देवता दो वस्तु नहीं है वरन एक ही वस्तु है। इस बात को समझना ही मन्त्रार्थ कहा जाता है। वस्तु को यामल ने निम्न प्रकार से समझाया है:-

मन्त्रार्थ देवता रूपं चिन्तनं परमेश्वरि।
मन्त्रार्थ कस्य देहास्य मन्त्रवाच्यो न देवता।।
वाच्य वाचक भावेन अभेदो मन्त्र देवयोः।
मन्त्र वाच्या देवताहि मन्त्रो हि वाचकः स्मृतः।।
वाचकेपिच विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति।।

अर्थात् मन्त्र और देवता वाच्य वाचक है। भाव में अभिन्न है, देवतामन्त्र का वाच्य है और मन्त्र देवता का वाचक है। अतएव वाचक का ज्ञान होने पर वाच्य प्रसन्न होता है।

प्रकारान्तरमाहभूत शुद्धौ

मन्त्रार्थ परमेशानि सावधानाऽवधारय।
आधारे चिन्तयेद्विद्यां शुद्ध स्फटिक सन्निभाम्।
हृदि मारकत श्यामां हरिद्वर्णा विशुद्धके।
अज्ञायां चिन्तेद्विद्यां चतुवर्णानुसञ्जिताम्।।
षट् चक्रे परमेशानि ध्यानात् साधकसत्तमः।।

अर्थात हे परमेश्वरि अब सावधान होकर मन्त्रार्थ को धारण करो, मूलाधार चक्र में शुद्ध स्फटिक के समान श्वते वर्ण, लिङ्गमूल में बन्धूक पुष्प के समान रक्त वर्ण, नाभिमूल में स्फटिक के समान शुभ्रवर्ण, हृदय में मरकत मणि सदृश श्यामवर्ण कण्ठ में (विशुद्ध चक्र में हरित वर्ण, भोहों के बीच आज्ञा चक्र में शुक्ल, रक्त, श्याम और हरिद् वर्णो से अनुरञ्जित स्वेष्ट देवी का ध्यान करे। छहों चक्रों में इष्ट देवता का ध्यान कर साधक श्रेष्ठता को प्राप्त करता है।

मन्त्र चैतन्य

मन्त्र चैतन्य का एक प्रकार पहिले लिख दिया गया है अब दूसरा प्रकार लिखा जाता है:- भूत शुद्धो-

चैतन्यं सर्वमन्त्राणां श्रृणुष्व कमलानने।
सहस्रारं शिवपुरं कल्पवृक्षमनोहरम्।।
चतु: शाखाश्चतुर्वेद नित्य पुष्प फलान्वितम्।
पीतं रक्तं तथा श्वेतं कृष्णञ्च हरितं तथा।।
भ्रमरैः कोकिलैर्देवि, बहुपुष्पोप शोभितम्।
एवं कल्पद्रुमं ध्यात्वा तदधो रत्न वेदिकाम्।।

तत्रोपरि महेशानि पर्यङ्क सुमनोहरम्।
नाना पुष्पैस्तु संयुक्तं रचितं हेममालया।।
तत्रोपरि महादेवं महा कुण्डलनी युतम्।
विभाव्यैवं जपेन्मन्त्रं ध्यात्वा देवी त्रिवर्गदाम्।।
आनन्दाश्रूणि पुलको देहावेशः सुरेश्वरि।
इत्यैतत् कथितं देवि मन्त्र चैतन्यमुत्तमम्।।
विष्णु मन्त्रे तथा शैव शक्ति मन्त्रे सुरेश्वरि।
मन्त्रार्थ मन्त्र चैतन्यं यत्नतः समुपाचरेत्।।

अर्थात् हे पार्वती अब तुम सब मन्त्रों का चैतन्य श्रवण करो। सहस्रार रूप शिवपुर में चारों वेद रूप चार शाखाओं से युक्त, तथा पीले,लाल,सफेद, काले और हरे रंग के पुष्पों और फलों से नित्य आवृत्त, भ्रमरों और कोकिलाओं से शब्दायमान, पुष्पों से सुशोभित मनोहर कल्पवृक्ष का और उसके अधो भाग में रत्न वेदिका का और वेदी के ऊपर पुष्प शय्या से युक्त मनोहर पलंग का ध्यान करे।

इसके उपरान्त त्रिवर्ग प्रदान करने वाली इष्ट देवी का ध्यान करता हुआ इष्ट मन्त्र का जप करे। इस प्रकार जप करने से आनन्दाश्रु टपकने लगते हैं रोमाञ्च होता है और देहावेश होता है। इसी को मन्त्र का चैतन्य कहते है। विष्णु मन्त्र, शिव मन्त्र एवं शक्ति मन्त्र के जप में मन्त्रार्थ ज्ञान और मन्त्र चैतन्य यत्न पूर्वक करे।

योनि-मुद्रा

मन्त्र मुक्तावली में लिखा है कि मन्त्री पूर्व-मुख अथवा उत्तर-मुख आसन पर बैठकर प्राणायामपूर्वक षट् चक्रों का ध्यान कर यथा मूला- धार में आधार पद्मलिंग के मूलदेश में स्वाधिष्ठान नाभि देश में मणिपूरक, हृदय में अनाहत, कण्ठ में विशुद्ध, भ्रूमध्य में आज्ञा, और ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार पद्म हजार दलों का है। आधार पदम के

कन्द के बीच में त्रिकोण है। उस त्रिकोण के बीच में सुलक्षण काम बीज (क्ली) है। उस बीज के मध्य में उस बीज से उत्पन्न मनोहर स्वयम्भु लिङ्ग है। उस लिङ्ग के ऊपर के भाग में हंसः से आश्रित चित् कला है। उस कला के बीच में स्वयंभू लिंग का वेष्टन किये हुए तेज रूप जगन्मयी कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करे। इसके बाद साधक आधारादि छहों पदमों का भेदनकर (षट्चक्र भेदनकर) तेजोरूपा कुण्डलिनी शक्ति को 'हंस' मन्त्र से ब्रह्मरन्ध्र में ले आवे और वहां पर स्थित सदाशिव के साथ क्षणमात्र के लिये समीपस्था के रूप में उसका ध्यान करे। उन शिव और कुण्डलिनी के संयोग से उत्पन्न लाख के जैसे अमृत से इष्ट देवता का तर्पण करे। तब उस अमृत से षट्चक्रों में स्थित सब देवताओं का तर्पण करता हुआ पूर्वोक्त मार्ग से कुण्डलिनी को फिर मूलाधार पद्म में ले आवे। इसके उपरान्त ब्रह्म नाड़ी मध्यमता मृणाल सूत्र सदृश चित्रणी नाड़ी ग्रथित रूद्राक्ष माला का ध्यानकर मन्त्र द्वारा सबिन्दु वर्ण द्वारा मन्त्र को भीतर रख अनुलोम विलोम जप करे। इस प्रकार पचास मातृका वर्ण शतवार एवं अ क च ट त प य श ये अष्ट वर्ग आठ बार अष्टोत्तर शतवार जप करे। जप के समय क्षकार रूप मेरू का कदापि लंघन न करे। हे देवि। स्नेहवश होकर ही मैने योनिमुद्रा का प्रकाश तुम्हारे पास किया है।

मन्त्र मुक्तावल्याम्

उपविश्यासने मन्त्री प्राङ-मुखो वा ह्युदङ्मुखः।
षट् चक्रं चिन्तयेद्देवि प्राणायाम पुरः सरम्।।
चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानन्तु षट् दलम्।।
आधारे कन्द मध्यस्थं त्रिकोणमिति सुन्दरम।।
त्रिकोण मध्ये देवेशि काम बीजं सुलक्षणम्।

काम बीजोद्भवं तत्र स्वयम्भूलिङ्गमुत्तमम्।।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् चित्कलां हंसमाश्रिताम्।
ध्यायेत् कुण्डलिनी देवीं स्वयम्भूलिंग वेष्टिताम्।।
चित्कलायां कुण्डलिनी तेजो रूपां जगन्मयीम्।
आधारदीनि पद्मानि भित्वा तेजः स्वरूपिणीम्।।
हंसेन मनुना देवी ब्रह्मरन्ध्रं नमेत् सुधी।।
सदा शिवेन देवेशि क्षणमात्रं रमेत् प्रिये।।
अमृतं जायते देवि तत्क्षणात् परमेश्वरि।
तदुद्भवामृत देवि लाक्षारस-समन्वितम्।।
तेनाऽमृतेन देवेशि तर्पयेत् परदेवताम्।
षट्चक्र देवतास्तत्र सन्तर्प्याऽमृत धारया।।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधार पुनः सुधीः।
ततस्तु परमेशानि अक्षमालां विचन्तयेत्।।
चित्रिणी विसतंत्वाभां ब्रह्म नाड़ी गतान्तरा।
तया संग्रथिताध्येया साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी।।

मन्त्रशिखा

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि सर्व ज्ञानोत्तमम्।
यस्य विज्ञान मात्रेण क्षिप्रं विद्या प्रसीदति।।
मूलकन्देतु या देवी भुजङ्गकार रूपिणी।
तत्भ्रमावर्त वातो यः प्राण हेतूच्यते बुधैः।।
त्रिशिरा अव्यक्त मधुरा कूजती सततो।
गच्छन्ती ब्रह्मरन्ध्रेसा प्रविशन्ती स्वकेतनम्।।
यातायात क्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम्।
तेन मन्त्र शिखा जाता सर्व मन्त्र प्रदीपिता।।

तमः पूर्णे गृहे युद्धत न किञ्चत् प्रतिभासते।
शिखा हीनास्तथा मन्त्रा न सिद्ध्यन्ति कदाचन।।
शिखोपदशः सर्वत्र गोपितः परमेश्वरि।
विनायेन न सिद्धिः स्यात वर्ष कोटि शतैरपि।। रूद्रयामले।।

अर्थात देवि तुम्हारे निकट अब सर्वोत्तम ज्ञानोपदेश करता हूं, जिसके विज्ञान मात्र से इष्ट देवता प्रसन्न होता है। मूलाधार में सर्प की आकृति की देवी रहती है, उसके भ्रमावर्त से निकली हुई वायु को प्राणवायु कहते हैं। त्रिशिरा अव्यक्त मधुर शब्द कारिणी कुण्डलिनी के ब्रह्मरन्ध्र और मूलाधार के यातायात क्रम मे साधक अपना मन लय करे। यही मन्त्रशिखा की उत्पत्ति होती है। मन्त्र शिखा ही सब प्रकार से मन्त्र की उद्दीपिका है। जिस प्रकार अन्धकार में व्याप्त कोई वस्तु दिखाई नहीं पड़ती, उसी प्रकार शिखा हीन मन्त्र कदापि सिद्ध नहीं होता। हे देवेशि, यह शिखोपदेश बड़े यत्न के साथ गुप्त रखना। शिखोपदेश छोड़कर सौ करोड़ वर्ष तक जप करने से भी सिद्धि की प्राप्त नहीं होती।

नोटः- मन्त्र चैतन्य, योनिमुद्रा, और मन्त्र शिखा ये तीन योग मार्ग से सम्बन्ध रखते है, धीरे धीरे अभ्यास करने से सफलता प्राप्त हो सकती है। नवदीक्षित पुरश्चरणकर्ता साधकों को इस विषय में चिन्तित न होना चाहिये।

पुरश्चरण आरम्भ करने पर अशौच निर्णय

पुरश्चरण के आरम्भ करने पर यदि किसी प्रकार का जातकाऽशौच अथवा मृताशौच हो जाय तो पुरश्चरण बन्द न करना चाहिये, तथा जो उपासक नित्यार्चन करता हो तो उसे भी बन्द न करे अतएव देवी यामल में लिखा है-

जपो देवार्चन विधिः कार्यो दीक्षान्वितैनरैः।

नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मजाम्।।

अर्थात दीक्षित साधकों को जप और नित्यार्चन करते रहना चाहिये। अशौच होने पर उन्हें कोई पाप अथवा सूतक नहीं होता। नारद पञ्चरात्र में लिखा है:-

सूतके मृतके चैव नित्यं विष्णुमयस्यच।
सानुष्ठानस्य विप्रेन्द्र सद्यः शुद्धिः प्रजायते।।

अर्थात अनुष्ठान में बैठे हुए पुरूष को जातकाऽशौच अथवा मृताऽशौच नहीं लगता। अशौच होने पर उसकी शुद्धि स्नान करने से हो जाती है।

विष्णुयामल में लिखा है कि यज्ञ व्रत, विवाह श्राद्ध, अर्चन और जप (पुरश्चरण) के तब तक ही माना जाता है जब तक कार्य प्रारम्भ नहीं होता, उपर्युक्त कार्यो के प्रारम्भ करने पर अशौच का दोष नहीं माना जाता है। यज्ञ में ब्राह्मण वरण, व्रत और जप में संकल्प, विवाह और व्रतबन्ध में नान्दीमुख श्राद्ध, तथा श्राद्ध में पाक (पिण्ड के लिये पाक) होने पर जातकाऽशौच अथवा मृताशौच नहीं माना जाता है।

तथाहि:- यज्ञ व्रत विवाहेषु श्राद्ध होमार्चनं जपे।
आरब्धे सूतकं न स्यात् अनारम्भे च सूतकम्।।
आरम्भे वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः।
नान्दी मुखं विवाहादौ श्राद्धे पाक परिक्रिया।।

यह नियम तीनों वर्णो के लिये है।

चार अयुत (40000) मन्त्र जप का छोटा पुरश्चरण।

चार अयुत मन्त्र जप का छोटा सा पुरश्चरण कृष्णाष्टमी से लेकर त्रयोदशी पर्यन्त प्रतिदिन नित्य-कृत्य के अनन्तर 5714 संख्यक मन्त्र जप किया जाता है और चर्तुदशी के दिन 5716 संख्यक जप किया जाता है, इस प्रकार सात दिन में चार अयुत 40000 जप संख्या हो

जाती है।

कृष्णाष्टमी से लेकर त्रयोदशी पर्यन्त 6X5714=34, 284 जपकर चतुर्दशी के दिन 5716+34284=40000 हजार हो जाता है इसके अनन्तर तद्दशांश हवन तर्पणादि सब किया जाता है और यह सात दिन का पुरश्चरण कहलाता है।

एक मास के पुरश्चरण का एक नया प्रकार

प्रातःकाल नित्यक्रिया नित्यार्चन के अनन्तर अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त मातृका वर्णो का अनुलोम से उच्चारण कर पुनः मूल मन्त्र का उच्चारण पुनः मातृका वर्णो का विलोम से (उल्टी रीति से) उच्चारण करे इस प्रकार प्रतिदिन एक मास तक 108 बार जप करे। इस प्रकार मन्त्र जप करने से भी मन्त्र सिद्धि होती है।

पुरश्चरण के बिना भी मन्त्र सिद्धि

प्रति-दिन तीन बार (प्रातः मध्यान्ह और रात्रि) में सर्वोपचारों से साङ्ग सावरण इष्ट आदि देवता की षट्मास अथवा एक मास पर्यन्त विधि पूर्वक पूजा करने से, पुरश्चरण के बिना भी मन्त्र सिद्धि होती है।

सिद्धि पर्यन्त पुरश्चरण का अभ्यास

यदि एक पुशरचरण से मन्त्र सिद्ध न हो तो दूसरा पुरश्चरण करना चाहिये, दूसरे से मन्त्र सिद्ध न हो तो तीसरा करना आवश्यक है। लिखने का तात्पर्य यह है कि जब तक मन्त्र सिद्धि प्राप्त न हो, तब तक पुरश्चरण करते रहना चाहिये और मन्त्र सिद्धि अवश्य प्राप्त करनी चाहिए, अतएव लिखा हुआ है-

सम्यक् सिद्धैक मन्त्रस्य पञ्चाङ्गोपासनेन हि।
सर्वे मन्त्राश्च सिध्यन्ति तत्प्रभावात् कुलेश्वरि ।।

सम्यक् सिद्धैक मन्त्रस्यनासाध्यं विद्यते क्वचित्
बहु मन्त्रवत: पुंस: का कथा शिव एव स:।।

अर्थात पञ्चाङ्गोपासनात्मक पुरश्चरण से जिसने एक मन्त्र में सिद्धि प्राप्त कर ली है उसे सब मन्त्रों की सिद्धि स्वल्पपरिश्रम से अल्प काल में ही प्राप्त हो जाती है। अत: उसने एक मन्त्र की सिद्धि पूर्णतया प्राप्त कर ली है, और अब उस मन्त्र सिद्धि के प्रभाव से कोई भी मन्त्र उसे असाध्य नहीं होता है; और जिसे अनेक प्रकार की मन्त्र सिद्धि हो गई है उसके विषय में क्या कहा जा सकता है वह तो साक्षात् शिव स्वरूप ही है। मन्त्र सिद्धि के लक्षण पहले लिखे गये है।

ग्रहण कालीन पुरश्चरण

ग्रहण काल में स्नान, सन्ध्या, पाठ, जप, पुरश्चरण तथा यथा शक्ति, यथा विभव स्वर्ण, रजत रत्न, भूमि गौ, महिषी और पड़वा आदि का दान अनन्त फल प्रद होता है। लोगों का यह दृढ़ निश्चय है कि इस पवित्र अवसर पर मन्त्र जपने से मन्त्र सिद्धि शीघ्र होती है।इस समय काम्य प्रयोग भी जिस कामना से किया जाय सद्य: फलदायक होता है। इसी बात को हमारे एक प्राचीन हिंदी कवि ने अपने एक दोहे में प्रकट किया है-

"राहु गयो जब चन्द्र पर, लोग देत धन माल।
लौंग देत बिरहाङ्गना, कारण कौन 'जमाल'।।

अर्थात-चन्द्र ग्रहण होने पर लोग यथाशक्ति धन-दौलत दान करते है, किन्तु जमाल कवि प्रश्न के रूप में जनता से पूंछता है कि बिरहाङ्गना अर्थात प्रोषित भर्तुका स्त्री उस समय (ग्रहण के समय) किसी तान्त्रिक को लौंग देती है, इसका क्या कारण है? कवि अपने दोहे में सूचित करता है कि उस समय जो भी प्रयोग किया जाता है, वह शीघ्र ही फलदायक होता है। अतएव विरहणी स्त्री लौंग देकर उसको शीघ्र बुलाने का अथवा उसके वशीकरण का प्रयोग किसी तान्त्रिक से कराती है। जिससे वह उसके अधीन होकर उसे अपने

साथ ले जाय अथवा उसके पास रहे।

अब प्रश्न यह उठता है कि ग्रहण-काल के स्पर्श काल से मोक्ष पर्यन्त केवल जप ही करे अथवा उसके अन्त में जप के दशांश हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण भोजन भी करावे। इस विषय में पुरश्चर्यार्णव के 568 पृष्ठ से 583 पृष्ठ पर्यन्त दिये गये उद्धरणों के आधार पर विचार करते हैं।

मेरूतन्त्र में लिखा है कि ग्रहण समय में व्रत रखकर समुद्र गामिनी नदी के नाभि प्रमाण जल में खड़े होकर स्पर्श काल से मोक्ष काल पर्यन्त मन्त्र का जप करे। उसके अनन्तर जप का दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन और उसके दसवें भाग के बराबर ब्राह्मण भोजन करावे।

यह कृत्य कई मास अथवा केवल मास के पुरश्चरण के ही समान है अर्थात जिस प्रकार ग्रहणोत्तर पुरश्चरण काल में जप के दशांश हवन, तर्पणादि किये जाते है एवमेव ग्रहण कालीन जप में भी तद्दशांश हवन तर्पणादि सब अपेक्षित है।

अथवा ग्रहण पुण्यकाल का मन्त्र के अनुसार समय विभाग करके जप, हवन, तर्पण, मार्जन तद्दाशांश अथवा जप के बराबर हवन तर्पण और मार्जन करके दूसरे दिन दशांश अथवा बराबर समांश ब्राह्मण भोजन करावे। तन्त्रान्तर में लिखा है- कि ग्रहण काल में ग्रहण के सूतक होने के समय व्रत रखकर समुद्र गामिनी नदी की नाभि प्रमाण गहराई में स्थित होकर अथवा ऐसा अवसर प्राप्त न होने पर शुद्ध जल से स्नान कर, स्पर्श से मोक्ष पर्यन्त निगद उपांशु और मानसिक इन तीन प्रकार के जपों में स्वशक्त्यानुसार एक जप करे। तदनन्तर मंत्र जप के दशांश क्रम से हवन, तर्पण मार्जनादि करे।

इसके अनन्तर अपने इष्टदेवता की सब प्रकार बड़ी पूजा कर अन्त में ब्राह्मण भोजन करावे। पुनः मन्त्र सिद्धि के लिये गुरूदेव की पूजा कर उन्हें प्रसन्न करे। इसके उपरान्त अपने देवता के कल्प के

अनुसार अर्थात् तत्तद्देवता कल्पोक्त प्रयोगों को करना उचित है। कहने का सारांश यह है कि मन्त्रों को सिद्ध किये बिना कल्पोक्त काम्य प्रयोग न करना चाहिये। काम्य प्रयोग करने के पूर्व मन्त्र सिद्धि प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

इस प्रकार ग्रहण कालीन पुरश्चरण के विषय में एक पक्ष की तो सम्मति ये है कि जितना जप किया जावे उसके अनुसार उसका दशांश हवनादि यथा क्रम किया जावे।

काली तन्त्र की इस विषय में अपनी सम्मति निम्नलिखित है-

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते।
चन्द्र सूर्यग्रहे चैव ग्रासावधि विमुक्तितः।।
यावत्संख्य मनुञ्जप्त्वा तावद्धोमादिकं चरेत्।।

अर्थात सूर्य चन्द्र ग्रहण में ग्रास काल से लेकर मुक्ति काल पर्यन्त जितना मन्त्र जपा जावे उतना ही होम तर्पण, मार्जनादि करना चाहिये न कि पूर्वोक्त जपके दशाँश। अर्थात् यदि दश 10 हजार जप किया है तो हवन भी 10 हजार होगा। इस मत की पुष्टि सनत्कुमार संहिता भी करती है और कहती है कि उक्त प्रकार जप होमादि करने से मन्त्र सिद्धि निःसन्देह होती है। अर्थात् यदि पाँच हजार जप किया है तो हवन, तर्पण मार्जनादि सभी पाँच हजार होंगे।

सिद्धेश्वरी तन्त्र भी कालीतन्त्र और सनत्कुमार संहिता के वचनों का पिष्ठ पेषण करता और कहता है कि इस प्रकार का ग्रहण कालीन पुरश्चरण सर्व सिद्धियों का देने वाला है।

तन्त्र चिन्तामणि में उद्धत तन्त्रान्तर वचन बताते है कि सूर्य चन्द्र ग्रास से लेकर मुक्ति पर्यन्त उपासक जप करता रहे और अन्त में जितना जप किया हो, उसका दशांश हवन करे और पुनः इसी क्रम से तर्पण मार्जनादि करे। इसी प्रकार किसी सङ्गम में जाकर भी जप करना चाहिये। ग्रास से लेकर मुक्ति पर्यन्त एक पैर के अँगूठे से खड़ा होकर जो मन्त्र जपता है तथा पञ्चाङ्ग अष्टाङ्ग अथवा दशाङ्ग

पुरश्चरण करता है वह सब सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है।

अत: कहते है कि चन्द्र सूर्य ग्रहण में स्नान कर पुरश्चरण का संकल्प करना चाहिये। यदि किसी के यहां कोई बच्चा पैदा हुआ हो अथवा कोई मर गया हो और इस बीच ग्रहण काल उपस्थित हो तो उपासक उस समय भी पुरश्चरण कर सकता है। यह नहीं कि अशौच के कारण ऐसे सुअवसर को हाथ से निकाल दे। अतएव कहा है-

जाताऽशौचं मृताऽशौचं ग्रहणे नास्ति पार्वति

इस प्रकार उपराग में जप कर पुन: उसका दशांश हवन एवं तद्दशांश, तर्पण मार्जनादि करने से मनुष्य देव रूप हो जाता है। इस पुरश्चरण में यदि किसी अङ्ग की कमी हो तो उसकी पूर्ति के लिये उस संख्या से दूना जप करना देना चाहिये। इस प्रकार करने से उस अङ्ग की पूर्ति हो जाती है। किन्तु यह द्विगुण संख्या केवल ब्राह्मणों के लिये है तदितर वर्णो को यथा क्रम तिगुना चौगुना और पाचगुना जप करना चाहिये।

इस प्रकार ग्रहण कालीन पुरश्चरण विधि में जितना जप किया जाता है उतना ही हवन करना भी लिखा है, और जप का दशांश हवन करने का प्रमाण भी मिलता है। अत: उपासक दो पक्षों में से एक पक्ष का आश्रय लेकर अपना पुरश्चरण समाप्त कर सकते है।

अनेक आचार्यो का मत है कि ग्रहण समय में पितृ श्राद्ध करना भी नितान्त आवश्यक है। अतएव चन्द्र पाठ, मन्त्रदेव प्रकाशिका, रत्नावल्यादि में लिखा है कि शक्ति के अनुसार 3-2 अथवा एक दिन का उपवास रखकर संक्षेप से श्राद्ध आदि पितृ कृत्य करके समुद्र गामिनी नदी के नाभि मात्र जल में स्थित होकर पूर्वोक्त प्रकार से मन्त्र जपकर तद्दशांश हवन तर्पणादि करने से मन्त्र सिद्धि होती है।

यद्यपि ऊपर के वचन से ग्रहण काल में श्राद्ध करना भी आवश्यक जान पड़ता है तथापि यह स्मार्तों के लिये तान्त्रिकों के लिये नहीं अतएव कहा है कि जो मनुष्य ग्रहण समय में पुरश्चरण

करना त्याग कर श्राद्ध करने बैठता है वह नरक गामी होता है। अत: ग्रहण में पुरश्चरण करना अत्यन्त आवश्यक है न कि श्राद्ध।

नास्तिकता के कारण ग्रहण काल में श्राद्ध न करने वाला मनुष्य इस प्रकार दु:ख भोगता है जैसे कि पङ्क में धंसी हुई गौ दुख: उठाती है।

उपर्युक्त विषय में सुधार्णवकार का मत है कि यह दीक्षित उपासकों के अतिरिक्त केवल स्मार्त धर्मानुयायी लोगों के लिये है। अतएव सनत्कुमार कहते है कि जो जप को छोड़कर ग्रहण समय में श्राद्ध करने बैठता है वह इष्ट देवता का द्रोही बनता है और अपने सात पीढ़ी के पितरों को नरक में ढकेलता है-

जप यज्ञं परित्यज्य पितृ यज्ञं करोति य:।
स भवेद्देवता द्रोही पितृन सप्त नयत्यध:।।

कुछ लोगों का कहना है कि ग्रहण काल में अपने आप तो जप करें किन्तु अपने प्रतिनिधि द्वारा श्राद्ध करा लेना चाहिये। कुछ लोगों का मत है कि पितरों के उद्देश्य से हेम श्राद्ध कर अर्थात सुवर्ण दान देकर पुन: पुरश्चरण करना चाहिये।

कल्पलताकार का कहना है कि "जप यज्ञं परित्यज्य" इत्यादि श्लोक का (सनत्कुमार वचन का) आशय यह है कि जो मनुष्य पहले से पुरश्चरण में बैठा है और संयोग से पुरश्चरण काल में मध्यान्ह में ग्रहण पड़ जाय तो उसे अपना पुरश्चरण सम्बन्धी जप छोड़ श्राद्ध नहीं करना चाहिये अर्थात जप को छोड़कर ग्रहण के कारण श्राद्ध करने में नहीं लगना चाहिये, किन्तु जो दीर्घ कालीन पुरश्चरण में नहीं बैठा है, वह श्राद्ध करके ग्रहण कालीन पुरश्चरण कर सकता है।

वस्तुतस्तु स्मार्तानां श्राद्धं तान्त्रिकाणान्तु पुरश्चरणमावश्यकम्।
तान्त्रिकस्तु जपं कुर्यात स्मार्त: श्राद्धं समाचरेत्।।

इति सिद्धान्तसार वचनात्।।

अर्थात स्मार्तों को श्राद्ध करना चाहिये और तान्त्रिकों को जप।

अत: परमार्थ में तान्त्रिकों के लिये जप करना ही श्रेष्ठ श्राद्ध है विधान स्मार्तों के लिये किया गया है।

ग्रहण समय में पुरश्चरण करने का संकल्प निम्नलिखित है-

ॐ अद्येत्यादि राहु ग्रहणे दिवाकरे निशाकरे वा अमुकगोत्रोऽमुक शर्माऽमुक देवताया अमुक मन्त्र सिद्धि कामो ग्रासाद्विमुक्ति पर्यन्त जपरूप पुरश्चरणमहं करिष्ये।

ज्योतिष शास्त्र वाले ग्रहण काल में जिस राशि और नक्षत्र पर ग्रहण होता है उस राशि वाले को तथा जिसका चौथा, आठवाँ और बारहवाँ पड़ता है उसको ग्रहण देखने का निषेध करते है। इसके लिये भी कहा गया है कि राहु को देखकर जप करना कोटि पुण्यों का फल देने वाला होता है। अत: अधिक पुण्य थोड़े पाप को दबा देता है। इसलिये कहा भी है -

दोषादल्पादभयंहित्वा ज्योतिष्शास्त्रनिरूपितम्।
राहुं दृष्ट्वा जपं कुर्यात् कोटिपुण्यफलप्रदम्।।

(साधन समुच्चये)

अर्थात अन्य दोष के भय को त्याग कर राहु को देखकर जप करना अनन्त फल को देने वाला है। यदि दोष से डरते ही हो तो दोष निवारण का उपाय भी बताया गया है कि, चाँदी की चन्द्रमा की प्रतिमा तथा स्वर्ण निर्मित सूर्य की प्रतिमा को पञ्चोपचारों से पूजकर ब्राह्मण को दान देने से उक्त दोष का परिहार हो जाता है।

ग्रहण काल से पहले भोजन की व्यवस्था के विषय में सिद्धान्त यह है कि चन्द्र ग्रहण लगने से तीन प्रहर पूर्व भोजन करना आवश्यक है, किन्तु बाल, वृद्ध और आतुर (रोगी) मनुष्य इस नियम से मुक्त है।

इस विषय पर सन् 1945 में हमने सम्वत् 2005 ज्येष्ठ शुक्लाष्टमी की 'चण्डी पत्रिका' में ग्रहण कालीन पुरश्चरण नामक एक लेख लिखा था, उसी लेख को हमने यहां पर उद्धृत कर दिया है।